दाँवपेंच

[तथा अन्य हास्य-रहस्य-कहानिया और रूपक]

ललितकुमार सिंह 'नटवर'

प्राप्तिस्थान

बम्बई बुक डिपो

१६९।१ हरिसन रोड,

कलकत्ता ७

प्रकाशक

कल्याणदास एण्ड ब्रादर्स

वड़े महाराज का मंदिर,

वनारस १

द्वितीय संस्करण

रथयात्रा २०११

मूल्य दो रुपया

मुद्रक

मुन्नीलाल

कल्याण प्रेस, वनारस

दूसरे संस्करण के विषय में

प्रसन्नता की बात है कि प्रथम सस्करण ६ मास मे ही प्राय समाप्त हो गया। न कहीं विज्ञापन किया गया और न पत्र-पत्रिकाओं मे आलोचनार्थ पुस्तक ही भेजी गई। प्रकाशन भी कुछ साधारण-सा ही था। तो भी पाठकों ने पसन्द किया। बिहार सरकार ने प्राइज़-लाइब्रेरी के लिये स्वीकृति दे दी। नवीन सस्करण की माँग आने लगी। किन्तु खेद है कि इसमें एक साल की देरी हो गई। कारण, हमारी कई पुस्तकें जो भिन्न-भिन्न प्रेसों मे दी हुई थीं, उनके प्रकाशित होने में अनावश्यक विलम्ब हो गया। इसके लिये आपने उन कृपालु एजेन्टों और पुस्तकालयों से क्षमा-प्रार्थी हैं, जिनकी माँग हम शीघ्र पूरी न कर सके।

—प्रकाशक

विषय-सूची

—:※:—

दाँव-पेंच

बंगला के सुप्रसिद्ध कथाकार तथा सिने-निर्देशक श्री प्रेमेन्द्र मित्र द्वारा लिखित और निर्देशित एम० पी० प्रोडक्शन के 'पथ बेंधे दिलो' बंगला फिल्म का हिन्दी रूपान्तर इन पंक्तियों के लेखक ने किया था, और जालिम दीवान की भूमिका भी निभाई थी। हिरोईन थी काननदेवी और बंगाल के अद्वितीय अभिनेता श्री छबि विश्वास हीरो थे। उसी चित्र की कहानी है। भाषा और कथारूप इस लेखक के अपने हैं।

देशी रजवाडों में पहले जो दाव-पेंच चलते थे, ऐसी ही एक रहस्य-रोमांच-लीला का दिलचस्प बखान है।

१

रायगढ़ का कुमार दीपनारायण सिंह मस्त और सैलानी स्वभाव का है। सुन्दर, सुसंस्कृत, पढ़ा-लिखा सहृदय। हाल ही में विलायत से लौटा है। क़र्ज़ ले-लेकर राजसी—ठाट निभाते रहना, उस राज्य की परम्परा रही है। कुमार दीप की भी यही दशा है। इधर-उधर सैर-सपाटे करना, मौज उड़ाना और रंगीन बोतलों में गम को थपकियाँ खिलाते रहना—उसका ख़ास काम है।

एक दिन—काशी की अहिल्याबाई घाट पर। सवेरे शहनाई की मीठी तान अलसाई हवा को गुदगुदा रही थी। ऊपरी सीढ़ी पर बैठा हुआ एक विरागी, गीत में अपनी वेदनाओं की कुहकन भरकर वायुमंडल में और भी करुणा उड़ेल रहा था। अचानक घुमक्कड़ दीपनारायण हैण्ड-केमरे का निशाना साधे आ निकला। उसकी इच्छा विरागी की फोटो लेने की हुई। केमरे की चुरा लेनेवाली आँख पर आँखें गड़ाकर और माल हड़प जाने का खटका झट से दबाकर, कुमारने ज्योंही केमरा सँभाला कि सामने देखकर उसकी सिट्टी-पिट्टी गुम। एक देव-कन्या सरीखी-रोबीली-सुन्दरी, राजसी चितवन तरेरे, केमरे की सीध में खड़ी है।

'बड़े शरीफ़ हैं आप ?'

'जी, माफ़ कीजियेगा, मेरी इच्छा...।'

'गंगास्नान करनेवाली बहू-बेटियों की फोटो लेने की...।'

'जी नहीं नहीं, मै तो इन गायक साधुजी का चित्र उतार रहा था कि अकस्मात् आप बीचमे आ गई। आँखें केमरे पर लगे रहने के कारण मैने आपको देखा ही नहीं।'

'परन्तु मैने तो आप के इस शरीफ़-लबादे के अन्दर की असलियत ताड़ ली ?'

लेकिन लाख सफ़ाई देने पर भी जब दूसरी ओर से तनिक भी विश्वास न किया गया तो कीमती केमरेको गंगाजी मे फेंक कर, शान से सुन्दरी को 'नमस्ते' कहता हुआ अभिमान के साथ दीप चलता बना। किन्तु किसे मालूम था कि इस अनजानी मुलाकात मे विधाता कौनसा खेल रच रहा है।

२

युवती मीनाघाट रियासत की राजकुमारी चन्द्रावती है। हाल ही मे बालिग होकर पिता की गद्दी पर बैठी है। राज-काज दीवान सूर्यशंकर सिह सॅभालते आ रहे हैं। स्वर्गीय महाराजके समय उनकी उतनी चलती न थी, किन्तु आजकल क्या कहना है। रोबदाब सातवें आसमान पर चढ़ा हुआ है। प्रजा का नाको दम है। अधिकांश प्रजा जंगली है—कट्टर और परिश्रमी। उसे पीस डालने मे दीवानजी ने कुछ भी उठा नहीं रखा है।

इन दिनों उन पर एक और चिन्ता सवार है। राज्यकी बाग-डोर सुरक्षित रखने के लिये, राजकुमारी का व्याह किसी ऐसे के साथ रचाना चाहते हैं जो कठपुतली की तरह इशारो पर नाचता

रहे। परन्तु हो वह भी राज्य-मर्यादा के अनुकूल, कुलीन और शिक्षित। अन्त में बहुत दौड़-धूप और छानबीन के बाद ऐसे एक 'हर तरह योग्य' वर का पता चला। वह और कोई नहीं, वही रायगढ़ का राजकुमार दीपनारायण है। दीवानजी को पता भी नहीं था कि राजकुमारीसे दीपकी कभी भेंट हो चुकी है। वे एक दिन एक पण्डितजी—घटक के साथ 'मीनाघाट पैलेस' से कार द्वारा 'रायगढ़-निवास' पहुँचे। कुशलक्षेम के बाद भूमिका शुरू हुई। फिर तो जो बातों का सिलसिला चला, उसे ठेठ बोली में 'मोल-तोल' या 'ठठेरे ठठेरे बदलौवल' ही कहा जा सकता है। क्योंकि दीवानजी यदि घुटे हुए घाघ थे, तो कुमार भी कम छँटा हुआ न था। अन्त में सब कुछ समझकर और, कुछ और सोचकर कुमार बोला—

'बस-बस दीवानजी, अब और कहने की जरूरत नहीं। मीना-घाटकी राजकुमारी के वर के नाम पर, आपके हाथों अपने आपको बेच देनेको तैयार हूँ। परन्तु······।'

दीवानजी कूटनीति की मुस्कान के साथ, एक खासी रकम का चेक काटकर—बढ़ाते हुए—बोले—

'अब परन्तु-वरन्तु छोड़िए। और यह स्मरण रखने के लिये इसे स्वीकार कीजिये कि अगले बुधवार के ४ बजे सन्ध्या-समय आपको 'मीनाघाट पैलेस' आना है।'

३

मगर उस दिन, दीवानजी के बिछाए शतरंज पर दुतर्फी चाल चली गई। मीनाघाट-पैलेस मे भी, और रायगढ़-निवास मे भी। 'कन्या-देखाव' की शुभ घड़ी के कुछ पहले ही राजकुमारी ने एक अत्यन्त आवश्यक राज-काजके बहाने दीवानजी को मीनाघाट भेज दिया, और अपनी चचेरी बहन लीलाको राजकुमारी की वेश-भूषासे सुसज्जित कर दिया। उधर, दीप ने भी अपने बदले, दिली दोस्त विजयकुमार को राजकुमार दीप बनाकर वहाँ भेज दिया।

बड़े आदर और ठाठ-बाट से स्वागत किया गया। 'कुमार साहब' खास महल मे ठहराये गये। सखियो के द्वारा 'राजकुमारी' से परिचय कराया गया। फिर तो, दोनो ने दोनो को सकुचाई आँखो से देखा और ललचाई आकांक्षाओ से गुपचुप परखा। किन्तु उनकी अन्तर-आशंकाओ का क्या कहना। मन-ही-मन भगवान से मना रहे थे, किसी प्रकार भाँडा न फूटे और शीघ्र-से-शीघ्र छुटकारा मिले। इतने ही मे आगबबूला बने, लपकते हुए दीवानजी आ धमके। लीला को काटो तो लहू नहीं। विजय-कुमार की बोलती बन्द। कर्मचारियो और सखियो पर शनि-कोप का आतंक। और इस प्रकार 'कन्या-देखाव' की निराली रस्म-अदाई।

कुछ अनुमान और कुछ खोज से दीवानजी को बहुत कुछ

मालूम हो गया। यहाँ कुछ न बोले। ·····पता लगाकर उस होटल के कमरे में मौत की तरह टपक पड़े, जहाँ कुमार दीप रक्त-रत्न की गंगा में रास को गोते खिला रहा था। इच्छा तो हुई, इसी हालत में उसे कच्चा ही चबा जाएँ, किन्तु मौका-महल देख कर क्रोध पीते हुए बोले—

'क्या समझकर आपने चाल चलने का साहस किया?'

दीप—'पहले तो आपकी ही तरफ़ से हुई दीवानजी!'

दीवान—(क्रोध-विस्फोट रोक कर) 'मगर, आप मात हो गये।'

दीप—(हँसकर) 'आपकी बराबरी भला कौन कर सकता है?'

दीवान—'मैंने नहीं, राजकुमारी ने आपको छुत्ता दिया।'

दीप—'किस प्रकार?'

दीवान—'हुँह, चले थे मीनाघाट-राजनीति से टक्कर लेने। नकली राजकुमार से नकली राजकुमारी की भेंट करा दी गई।'

दीप—(आश्चर्य से) 'अच्छा।'

दीवान—'जी।'

दीप के मन में राजकुमारी की इस चातुरी पर एक विचित्र कौतूहल हुआ। कम-से-कम एक बार देखने की प्रबल उत्कंठा उत्पन्न हुई। प्रगट में बोला—

'अच्छा दीवानजी, बीती बिसारिए। भूल तो आखिर हो ही गई मुझसे। अब कहिए क्या आज्ञा है?'

दीवान—(शिकार को अनुकूल समझ) 'मेरी आज्ञा क्या ? मैं तो आपकी—रायगढ़ ऐसे प्रतिष्ठित राजवंश के उत्तराधिकारी की, भलाई के विचार से ही यह सुन्दर सम्बन्ध जुटा देना चाहता था, क्योंकि मीनाघाटका राजवश भी...।'

दीप—(बात काटकर)'तो मै आपके आज्ञानुसार प्रस्तुत हूँ। बोलिए क्या करना होगा ?'

दीवान—'राजकुमारी को लेकर आज हम राजधानी जा रहे हैं। ठीक आठवें दिन—सवेरे की गाड़ी से आप वहाँ आइए। क्या कहते है ?'

दीप—'जी, मै अवश्य पहुचूँगा।'

दीवान—'आपके स्वागतके लिये राज्य के कर्मचारी स्टेशन पर मौजूद रहेगे। किन्तु स्मरण रहे, फिर किसी प्रकार की गड़वड़ी कीजियेगा तो...।'

दीप—'नहीं नहीं, अव ऐसी भूल न होगी; विश्वास कीजिये।'

४

विचित्र संयोग !—ट्रेन के जिस सेकेण्ड-क्लास कम्पार्टमेण्ट मे दीप सवार हुआ, एक पढ़े-लिखे अजीब उजबक से भेंट हो गई। महाशयजी वर्थ पर होल्डौल विछा कर, सिरहाना इंजन की ओर करना चाहिये या उलटी तरफ़—यह निश्चय न कर पा रहे थे। इस विचित्र मनोवैज्ञानिक उलझन के तमाशेसे तंग आकर दीप ने जव अनिमंत्रित सुझाव पेश कर दिया कि 'जनाव, आगे-पीछे का

विचार छोड़कर बीचमें दखल दीजिये' तो हजरत बहुत झुँझलाये। फिर दोनों में मुसाफिरी-सुलभ-सौहार्द हो गया। दीप को बताया उन्होंने 'रियासती वकील के उम्मीदवार चुने जाकर मीनाघाटी जा रहे हैं। उधर शिवपुर-मिडिल-इंगलिश स्कूल की हेडमास्टरी की मंजूरी भी आ गई है। अभी तक फैसला नहीं कर पाये हैं कि कहाँ जायँ।"

दीप ने कहा—'वाह साहब, आप तो बड़े भाग्यवान हैं। दो-दो जगहों से बुलाहट, तिस पर उत्तम भी नौकरियाँ। और एक हम हैं बदनसीब, कहीं कोई नहीं पूछता।' महाशयजी तकदीर की खूबी पर मन-ही-मन इतराये तो, मगर निर्णय न कर पाये कि कौन नौकरी स्वीकार करें। आखिर पूछा—

'क्यों साहब, रियासती कामों में तो भारी झगड़े-झमेले लगे रहते हैं, और धौंस भी सहनी पड़ती है?'

दीप—(गम्भीरता से) 'इसमें क्या संदेह है महाशय! राज-काजी लोगों की जान सदा उलझन और खतरे में रहती है।'

कुछ सोचकर फिर उजबक महाशय ने पूछा—

'मीनाघाटी स्टेशन के पहले जो जंक्शन पड़ता है, उसके द्वारा कलकत्ते लौटने की गाड़ी तुरंत ही मिल जायेगी न?'

दीप—'वहाँ उतरते ही पता चल सकता है।'

फिर दोनोंको नींद आ गई।

सवेरे मीनाघाट स्टेशन पर जब कुमारकी आँखें खुलीं तो

देखा सामने का बर्थ खाली है। सोचा, रियासत की वकीली आखिर स्कूल मास्टरी से हार गई। इतने में ही रियासत के कई कर्मचारियो ने आ घेरा। पूछने पर मालूम हुआ कि इसी ट्रेन से आनेवाले कुमार दीपनारायण और वकील जगदीश लाल को लेने आए है। एक ने पूछा 'आप·· ?'

कुमार दीप—'जी .., मै एक मामूली आदमी...।'

उस कर्मचारी ने उन्हे वकील समझ लिया —'ओ, तो आप जगदीश बाबू हैं।' कुमार ने भी कुछ समझकर उत्तर दिया—

'जो समझ लीजिये; लेकिन हूँ बिल्कुल साधारण व्यक्ति।'

कर्मचारीने हँसकर कहा—'आप वकील लोग बाते बनाना खूब जानते हैं।' फिर कुमार के न आने पर खेद प्रगट करते हुए अन्य व्यक्तियो से कहा—'वकील साहब का सामान ले चलो।' और इस प्रकार कुमार दीप को वकील जगदीश के रूप में, राज-कर्मचारियोने राज-महल मे पहुँचाया।

कर्मचारी दीप को दीवान की हजूरी मे ले गये। पहचानते ही एकाएक दीवान पागल ही हो उठना चाहता था कि बडी चेष्टा से अपने को सँभाला, कर्मचारियो पर' कुछ भी प्रगट न होने दिया। किन्तु जब सब इशारा पाकर बाहर चले गये तो जैसे बाघ शिकार पर झपटता है, उसी मुद्रा मे डपट कर कुमार से बोला—'अगर नकली नाम की धोखाधड़ी के अभियोग में, तुम्हे गिरफ्तार करा दूँ, तब, ?' 'तब' ? कुमार बोला 'तब मै और

क्या करूँगा ? सिवा इसके कि मुझसे ब्याह रचाने की आड़ से राजकुमारी के साथ जालसाजी करने के प्रमाणस्वरूप में आपका हस्ताक्षर किया हुआ चेक पेश कर दूँ ।' दीवान की इच्छा तो हुई कि अभी कुमार को कच्चा ही चबा जाए, किन्तु परिस्थितियों की मजबूरी ने लाचार कर दिया । अन्दर ही अन्दर दाँत कट-कटाकर रह गया ।

५

वकील जगदीशलाल के नाम से दीप एक अच्छे क्वार्टर में आराम से रहने लगा । दीवान अवसर की ताक में घात सोचता रहा । उसने पूरी चेष्टा की कि राजकुमारी से दीप न मिलने पावे । अन्त में एक दिन सुयोग आ ही गया । दीप साइकिल पर सवार होकर घूमने निकला । सरकारी बगीचे की सँकरी सड़क पर उधर से एक सुन्दर टमटम आ रही थी । बचाने की भरपूर चेष्टा करने पर भी—साइकिल-टमटम की आखिर एक हलकी टक्कर हो ही गयी । दीप गिरते-गिरते बचा । क्रोधभरी दृष्टि जैसे ही टमटम-सवार पर गयी, मुँहसे प्रगट होनेवाला आक्रोश वहीं दब गया । उधर सलज्ज, मुसकुराहट भरे मधु मुखसे निकल पड़ा—'माफ़ कीजियेगा ।' दीप ने देखा, वही काशी-घाट वाली गर्वीली युवती है । शायद उसने भी पहचान लिया । क्षण भर कोई कुछ न बोला, किन्तु चारों आँखें न जाने चुपके-चुपके आपस में क्या कह-सुन गईं । प्रगट रूप से जान-

पहचान की नींव पड़ी। दीप ने बताया, वह नया-नया रियासत का वकील होकर आया है। युवती—राजकुमारी ने अपना वास्तविक परिचय न देकर कहा—

'मै रानीजी की खास सहेली हूँ।' और टमटम से उतर पड़ी। दीप ने भी साइकिल को एक वृक्ष के सहारे लगा दिया। फिर दोनों पास के एक प्राचीन खँडहर मे चले आए। क्षण भर कोई कुछ न बोला। दीप ने मौनता भंग की—'क्या रानी जी अपने कर्मचारियों को कभी दर्शन नहीं देतीं ?'

'देती हैं' युवती ने उत्तर दिया 'किंतु यह दीवान जी की मर्जी पर है।'

दीप—'दीवान की मर्जी पर अपने कर्मचारियो को दर्शन देती हैं। तब तो अच्छा शासन चलाती है।'

युवती—(मुस्कुराकर) 'क्या इसमे कुछ असुविधा है ?'

दीप—'सुविधा-असुविधा की बात तो मै नहीं बता सकता। मामूली कर्मचारी हूँ—तिस पर नया, क्या जानूँ ? हाँ, आपसे एक निवेदन है।'

युवती—'कहिये।'

दीप—'क्या आपके दर्शन कभी-कभी हो सकते हैं ? इसमे तो दीवानजी की मर्जी की जरूरत नहीं है ?'

युवती—'दीवानजी की मर्जी की, यहाँ हर काममे जरूरत है वकील साहब। खैर, मैं चेष्टा करूँगी।'

दीप—'तो कल इसी समय यहीं, आशा करूँ ?'

युवती—'देखिये, मैं पूरी चेष्टा करूँगी, परवश हूँ ।' अच्छा, देर हो रही आज्ञा दीजिये । नमस्ते ।'

दीप—'नमस्ते ।'

शाम को राजकुमारी ने दीवानजी से पूछा—'अच्छा दीवान काका, यह जो स्टेट का नया वकील आया है, कभी दरबार में नहीं आया ।'

दीवान—'क्या बताऊँ बिटिया, बड़ा झेंपू है । कई बार हाजिर होने को कहा—मगर कहता है-कुछ दिन और ठहरिए, जरा अपने में साहस बटोर लूँ तो रानी जी के दर्शन कर सकूँगा ।'

राजकुमारी—(मुस्कराकर) 'ओ यह बात है ! अच्छा किसी दिन उसे जरूर लाइए ।'

दीवान—'भला इसके बिना भी चल सकता है ? उसे दरबार में आना ही पड़ेगा ।'

दूसरे दिन । ठीक उसी समय, दीप खण्डहर में जैसे ही पहुँचा, वीणा-विनन्दित-स्वर लहरी में किसी का स्वर्गीय संगीत सुन पड़ा । आगे बढ़कर देखा । वही कलवाली—मतलब बनारसवाली—वही जूही के पौधे की एक फूल भरी टहनी से खेलती हुई गा रही है । मन्त्रमुग्ध हो-स्तब्ध भाव से दीप खड़ा-खड़ा सुनता रहा । जैसे ही गीत खत्म हुआ, उसने सायकिल को एक पेड़ के सहारे लगा दिया । एक हलकी झनझनाहट की आवाज़ हुई । युवती ने ज़रा चौंककर इधर देखा, और सलज्ज-नाट्य से बोली—

"भला यह कौन सा तरीका है कि कोई स्त्री अकेले मे—अपना दुख भुलाने को कुछ गा रही हो तो कोई पुरुष चुपके से आकर सुने ?'

दीप पहले तो कुछ घबराया, फिर बोला—

'इसके उत्तर मे सिवा क्षमा-याचना के और क्या कहा जा सकता है ?' और फिर मै तो किसीके दर्शन पानेकी स्वीकृति प्राप्त करके ही यहाँ आया हूँ। क्या मालूम था कि जैसे इस खण्डहरकी राजलक्ष्मी इस तरह दर्शन देगी !' राजकुमारी मन-ही-मन प्रसन्न हुई।

बोली—'पुरुषवर्ग, विशेषकर कानूनी लोग बड़े ही वाक्पटु होते है। खैर, यह तो बताइए। कल आपने राजकुमारी जी के दर्शन की कामना प्रगट की थी, फिर मुझसे मिलने की चाह एकाएक कैसे हो उठी ?'

दीप—'आपसे मिलने की सम्भावना तो नही थी, फिर भी एकाएक इस प्रकार मिल जाने पर......क्या बताऊँ, काशी की घटना तो जीवन भर भूलने की नहीं है। और रानी जी के दर्शन एक बार करने की इच्छा से ही तो मै......'

राज०—'उन्हे तो आपने कभी देखा भी नहीं, फिर दर्शन की उत्सुकता का कारण ?'

दीप—(सँभलकर) 'बात यह है कि मैने सुन रखा था कि

रानी जी का अधिकार केवल महलों तक ही सीमित है, और प्रजा पर हुकूमत कोई और करता है। इसीलिये......'

इतने में ही एक घटना घटी। जंगली प्रजा का मुखिया जंगी सरदार दीवान के विरुद्ध था। ऐसा न हो कि वह 'नए वकील' से मिलकर सारा भेद खोल दे, इसीलिए दीवान जी ने उसे पकड़ने के लिये सिपाही छोड़ रखे थे। जंगी भागता हुआ उधर ही आ निकला और इन दोनों से, पीछा करनेवालों को न बताने की प्रार्थना करता हुआ, आड़ में छिप गया। सिपाही भी दौड़ते हुए आये, और इधर-उधर ढूँढने लगे। जमादार की दृष्टि रानी पर पड़ी, उसने चुपके से आदमियों से कहा 'रानी जी'। और फिर राजसी सलामी देकर सब चलते बने। दीप को तो जैसे काठ मार गया। कुछ डरा। कुछ झेंपा कि रानी ने तीसरी बार उसे मात दी। साथ ही मन ही मन रीझा भी। और अन्त में अभिमान भी हो आया। इतने में ही जंगी को पकड़े हुए कर्मचारी आ पहुँचे। जंगी रानी की दुहाई दे रहा था कि, उस पर कैसे-कैसे अत्याचार किये गये हैं। और अब.....दीप उसकी बात काटकर रानी की ओर संकेत करते हुए बोला—

'सरदार, तुम किससे क्या कह रहे हो? भेड़िये की फरियाद बाघ से करने आये हो?' रानी इस व्यंग पर तिलमिला उठी, और कुछ क्रोध के साथ दीप की ओर देखती हुई चल पड़ी।

सिपाहियो की तरह दीप ने भी सलामी दागी। जंगी को रस्सियो से खूब जकड़कर काठ की पिंजड़ेनुमा कैदी गाड़ी मे बंद कर दीप से जमादार बोला—

'हुजूर दीवान जी का हुक्म है, इसे सख्त पहरे मे कैदखाना पहुॅचाया जाये।' 'ठीक तो है' कहता हुआ दीप गाड़ी के पीछे बैठ गया और जमादार से बोला—'मै खुद अपनी निगरानी मे इसे कैदखाना पहुॅचाता हूॅ, तुम लोग मेरी साइकिल लेते आओ।' कुछ दूर आगे जाने पर दीप पिंजड़े के द्वार का खटका हटाकर कैदी से बोला—

'क्यो सरदार सो गये ?' जंगी दुख की मुस्कुराहट चेहरे पर लाकर बोला—'हुॅह, मेरी ऑखो मे और नींद ? क्या कहते हो, दारोगा जी।'

'मै दारोगा नहीं, वकील हूॅ।' दीप ने कहा।

जंगी—'वकील ? क्या मतलब ?'

दीप—'वकील माने कानून जाननेवाला।'

जंगी—'हुॅह, तो इस राज्य मे कानून जाननेवाले की क्या जरूरत ? यहॉ तो दीवान जी का हुक्म ही कानून है।'

दीप—'किस तरह ?'

जंगी—'आप शायद नए-नए आए है। यह सब पूछिएगा तो आप पर भी आफ़त आयेगी।'

दीप को पहले ही से कुछ-कुछ दीवान जी की कार्यवाहियो का पता था। जंगी से घुमा-फिरा कर पूछने पर और भी बहुत

कुछ भी जानकारी हो गई। गाड़ी ऐसे स्थान से जा रही थी, जहाँ वृक्षों की बहुतायत से दिन में ही अँधेरा-सा हो रहा था। दीप गाड़ीवान से गाड़ी रुकवाकर पेशाब करने के बहाने उतर कर एक ओर—ज़रा दूर चला गया। जंगी ने देखा कि पिंजड़े का द्वार अधखुला-सा है। पैर से हटा कर देखा, एकदम खुल गया है। बस आहिस्ते से उतर कर चुपचाप एक तरफ़ भागा। गाड़ीवान को आहट मिल गई, चिल्लाना शुरू किया—'पकड़ो-पकड़ो, क़ैदी भाग गया, क़ैदी भाग गया।'

\+ + + +

६

दूसरे दिन, पहले-पहल दरबार में दीप की पेशी हुई। रानी गंभीर भाव से सिंहासन पर विराजमान थीं। दीवान ने कैफ़ियत तलब की।—'राज्य के सबसे बड़े विद्रोही जंगी सरदार को किसने चुपके से रिहा कर दिया?' दीप उबल पड़ा। रियासती अत्याचारों से परिचित हो ही चुका था। साथ ही, रानी ने भी अपना भेद छुपा कर—उसे जो धुत्ता दिया था। उससे भी वह कुढ़ा हुआ था। रानी के अनजाने या लापरवाही से, राज्यकर्मचारियों के ज़ुल्मों का पर्दाफ़ाश बड़े ही जोशीले शब्दों में करता हुआ, इस्तीफ़ा देकर तेज़ी से चलता बना। रानी को अनुभव हुआ, जैसे वह खोई जा रही । मन का भेद छिपा कर दीवान से बोली—'काका, इस

प्रकार अभिमानपूर्वक इस्तीफ़ा देकर कोई कर्मचारी बेधड़क चला जाये, यह राज्य का अपमान है। चाहे जैसे हो, लौटा कर— उसे उसी काम पर वहाल कीजिये, और फिर उसे बेइज्जती के साथ कभी निकाल बाहर किया जायेगा।'

घाघ दीवान शायद रानी के मनकी भाँप गया। इसलिये दीप के निवासस्थान से जाकर उसने बातो का सिलसिला कुछ इस तरह शुरू किया, जिससे दीप और भी भड़क उठा। दीवान बोला—

'राजकुमारी तो आपको जाने देना पसन्द नहीं करतीं। इसीलिये मै आपको लौटाने आया था। पर देखता हूँ, आपका इरादा अटल है। खैर, जब आप जा ही रहे है, तो रास्ते मे आपको कष्ट न हो, इसलिये (दो हज़ार के नोट देते हुए) यह छोटी सी रकम मंजूर कीजिये।"

दीप क्रोध से इस्तीफा देकर चला तो आया, पर रास्ते भर उसका हृदय अशान्त रहा। राजकुमारी के आन्तरिक और बाह्य आकर्षणो से वह बेतरह प्रभावित हो चुका था। साथ ही यह भी उसके ध्यान मे आया कि सुशिक्षिता-सुचतुरा है तो क्या हुआ, धूर्त दीवान राज्य मे गोलमाल मचा कर बेचारी को वर्वाद कर देगा। एक विचित्र बेचैनी अनुभव करने लगा। 'क्या... किसी प्रकार इस्तीफ़ा लौटाया नहीं जा सकता ? इतने मे ही दीवान की आकस्मिक उपस्थिति और उसकी कूटबार्ता ने फिर

माथे में खलबली मचा दी। इस्तीफा वापस लौटाने की इच्छा को क्षणिक दुर्बलता समझ, वह राजधानी त्यागने को और तत्पर हो गया था, किन्तु दीवान को दो हजार के नोट देते देख विचारों ने पलटा खाया। तेज दिमाग तेजी से दौड़ने लगा। रानी का तेजस्वी पर भोला मुखड़ा, उस पर एक विषाद की छाया, राज्य की कुव्यवस्था, दीवान की चालचाल, दीप के मानस-पट पर विद्युत-गति से चित्रित हो उठे। क्षण भर में ही, मन-ही-मन कर्तव्य निश्चित करके बोला—

'क्या कहूँ दीवानजी, रानी जी की आज्ञा: तिस पर आप इतना कष्ट उठाकर खुद अनुरोध करने आए। इस्तीफा नहीं लौटाता हूँ तो केवल अपराध होगा। पर एक शर्त है। मुझ सेवक को सदा अपनी छत्रछाया में रखियेगा।'

दीवान मन में कट तो गया पर प्रगट बोला—

'आपके इस निश्चय से बड़ा संतोष हुआ।'

७

अब तो रानी और राज्य-वकील हिल-मिलकर राजकाज की समुचित देख-रेख करने लगे हैं। दीवान जी की उतनी जरूरत नहीं होती—इससे उनके पैरों के नीचे की धरती खिसकती-सी जान पड़ती है। तब उन्होंने एक गहरी चाल चली। राजीव-लोचन उनके दूर के रिश्ते का नाती है। बिगड़े रईस का मातृ-पितृ-हीन लड़का, तिस पर औव्वल दर्जे का मोटू और पियक्कड़।

उसकी एक मौसी है, जो उसकी भी चाची है। दोनो को दीवान जी बड़े आदर से राजमहल के अतिथि गृह मे ले आते है। लोगो को न जाने किस तरह मालूम हो जाता है कि सम्मानीय युवक अतिथि ही राजकुमारी चन्द्रा का भावी पति है।

एक दिन रानी और वकील टेबल पर फैले एक नक्शे को देख रहे थे। अगर कोई इन दोनो के देखने की लुका-चोरी को गौर से देखता तो एक दूसरा ही नक्शा बनता हुआ नजर आता। जब राजकुमारी नक्शे पर गम्भीर होकर देखती तो वकील चुपके से उसके मुखड़े को निहार लेता, और जब वकील नक्शे पर दृष्टि जमाता तो रानी उसके चेहरे का चित्र आँखो मे उतार लेती। इस अभिनव-अभिनय के अतिरिक्त दोनो के अन्तर मे भी जो एक प्राकृतिक लुकाचोरी का दृश्य अंकित होता जा रहा था, उसे अन्तर्यामी के सिवा और कौन देख सकता है? हाँ, दीवानजी की आशंकित-कल्पना बेचैनियो के पख लगाए हरदम-हर जगह चक्कर काटती रहती थी। दीप ने नक्शे पर तर्जनी घुमाते हुए कहा—

'अगर जंगल का यह हिस्सा साफ़ कर सड़क निकाल दी जाय तो जंगलियो का खतरा भी बहुत कुछ टले और उन्हे सुविधा भी हो।'

राजकुमारी ने मुस्कुरा कर उत्तर दिया—

'मगर दीवान काका की राय कुछ और ही है।'

इसके उत्तर में दीप कुछ कहना ही चाहता था कि आकस्मिक वज्रपात की तरह दीवान जी झटमे आ धमके और बोले—'देखता हूँ, बेतरह उलझी हुई हो बिटिया!'

राजकुमारी—(सँभल कर) 'नहीं नहीं, उलझना कैसा काका? एक नक्शे पर विचार कर रहे थे हम लोग। आप भी आ ही गये हैं, देखकर पास कर दीजिये।'

दीवान—'इस समय एक दूसरे ही आवश्यक काम से आया हूं बेटा। बात यह है कि (लम्बी भूमिका के उपसंहार का अन्त करते हुए) स्वर्गीय महाराजाधिराज जो भार इस वृद्धि सेवकपर सौंप गये, उसमें एक तो तुमने आप ही हलका कर दिया।...... क्या नाम है? हाँ, जगदीश बाबू एसे राजकाजी—सलाहकार तुम्हें प्राप्त हो गए हैं। अब एक दूसरा बोझा उतार दूँ तो निश्चिन्त होकर काशीवास करूँ। कुमार दीप तो महा गिरा हुआ साबित हुआ। बात पक्की करके भी नहीं आया। बड़ी दौड़-धूप के बाद एक सुयोग्य वर का पता लगाकर उसे उसकी संरक्षिका सहित यहीं बुला लिया है। राज्य के ज्योतिषियों और पंडितों ने जन्मपत्रियो का मिलान करके शुभलग्न का दिन भी निश्चित कर दिया है, अगले महीने की १७ तारीख। अब...'

राजकुमारी......(अप्रतिभ होकर) 'काका, अभी इसकी क्या जल्दी है? अभी से ब्याह न करूँगी।'

दीवान—'नहीं बिटिया, अब यह कैसे हो सकता है?

तैयारियाँ आरम्भ हो गई हैं--सभी जगह निमंत्रण भेजे जा रहे हैं'......दीप से नहीं रहा गया। दीवान के शब्द उसकी छाती पर हथौडी की चोट मार रहे थे। उठकर जाना ही चाहता था कि दीवान ने रोककर कहा—

'कहाँ चले वकील साहब? सब कुछ तो आप ही को करना होगा। मै बूढ़ा—कमज़ोर; किधर-किधर, क्या-क्या देखता फिरूँगा? खूब धूमधाम से मेरी रानी बिटिया का व्याह करा दीजिये। मेरे काशी-वासके बाद आप ही तो राज्य के दीवान होने योग्य हैं।'

चोट-पर-चोट खाकर दीप तिलमिला उठा। दोनो हाथ उठाकर प्रणाम करने की मुद्रा मे झट से बाहर हो गया

८

दीप का मन और अशान्त हो गया। जी मे आया फिर इस्तीफ़ा देकर चल दूँ, और कभी न लौटूँ। किन्तु शीघ्र ही यह खयाल बदल गया। सोचने लगा—'दीवान ने पहले मेरे ही साथ राजकुमारी के व्याह का प्रस्ताव किया था। उस समय बात कुछ और थी। मैने उसे देखा भी नहीं था। पर अब? अब तो न केवल देखा ही है, बल्कि......बहुत कुछ आगे पग बढ़ा चुका हूँ। तब? तब यहाँ से भागना कायरता है। लेकिन किसी दूसरे के साथ जो चन्द्रा के व्याह की तैयारी हो रही है, इसका क्या होगा? क्या किसी भाँति रोका नहीं

जा सकता ?' इसी प्रकार की अव्यवस्थित विचारधाराओं में बहुत देर तक बहता हुआ—एकाएक कुछ निश्चय करके उठा और सफ़र की आवश्यक तैयारी करके नौकर से बोला—

'मैं एक बहुत ज़रूरी काम से जंगलटोला की कचहरी जा रहा हूँ, दरबार में कह आना' और फिर साइकिल द्वारा घने जंगल की ओर चल पड़ा।

दीवान ने सुना। उसके होंठ में एक दबी-सी हिंसक मुस्कुराहट फैल गई। अपने एक ख़ास दूत को बुलाकर—धीरे से कहा—

'जगदीश बाबू वकील जंगलटोला गये हैं। उधर अनेक बीहड़ पहाड़ियाँ, भयंकर जंगल, खोह, नदी-नाले हैं; हिंसक पशुओं का तो कहना ही व्यर्थ है।'......वकील की लाशका भी पता नहीं चल सकता, किसी पर सन्देह करना तो और भी कठिन है।......मेरा ख्याल है तुम समझ गये होगे।......इनाम की चिंता न करना।'

दूत—'जी मैं सब कुछ समझ गया।'

दीवान—'तो फ़ौरन रवाना हो जाओ।'

दूत सर झुकाकर चलता बना। दीवान ने संतोष की साँस ली।

६

राजकुमारी चन्द्रावती जब तक राजसिंहासन पर नहीं बैठी

थी, अत्यन्त सुखकर और निर्द्वन्द्व जीवन बिता रही थी। सदा पढ़ना-लिखना, घुड़सवारी, व्यायाम, संगीत, विनोद। और अब ? जैसे दूसरी दुनिया मे आ गई। सारे हास-उल्लास समाप्त। रियासती झंझटो से जैसे बुढ़ापे का आक्रमण आरम्भ हो गया हो। दीवान काका तो सब कुछ देख-भाल करते ही थे—राज्य और राज्याधिकारिणीके संरक्षक की तरह। परन्तु कभी-कभी अनुभव होता, वह दीवान काका की गोद मे खेलनेवाली बालिका नही, उनके विकट-संकेत-सूत्र की कठपुतली मात्र है। क्या करती ? अप्रत्यक्ष मे असहाय थी, प्रगट मे परवश। बाल-विकास पूर्ण होकर निज मे अपूर्णता अनुभव करने लगा था। उसे प्रथम-प्रथम काशीघाट पर किसीकी धूमिल छाया छू गई थी। जगदीश वकील के साक्षात्कार ने मिटती लकीरों मे गहरा रंग भर दिया। चन्द्रा के भावी जीवन की कल्पनाएँ सहस्रो रगीन धाराओ मे लुका-छिपी की अठखेलियाँ करने लगी। जैसे उसने सच्चा सहारा पाया—पहले पहल जीवन के बाहरी ज्ञान मे और अन्दर के अज्ञान मे भी शायद। हाँ कभी-कभी जगदीश के कुल-वश के बारे मे वह असमजस मे पड़ जाती थी।

ज्योही मालूम हुआ कि वकील साहब जंगलपुरी गये, वह घबरा गई। जैसे सैकड़ो बिजली के रंग-बिरंगी बल्बों के प्रकाश से झलमल रङ्गमहल मे 'स्विच' फेल कर जाने से अचानक अन्धकार हो जाता है, उसी प्रकार राजकुमारी के हृदय मे घोर अंधेरा छा गया। शीघ्र ही दीवान जी को बुलाकर कहा--

'यह क्या बात है काका, वर्कील जगदीश एकाएक बिना सूचना दिए जङ्गल में क्यों चले गये ?'

'क्या बताऊँ बिटिया'—गले को साफ करके दीवान ने कहना शुरू किया—'अभी तक तुम्हें बताया नहीं, जगदीश छद्मनाम है। यह आदमी बड़ा ही धोखेबाज जालिया है। असल में यह वही विजयगढ़ का आवारा कुमार दीपनारायण.....।' अचानक जैसे रङ्गमहल फिर जगमगा उठा हो, उसी प्रकार दीवान जी के इस शब्द पर चन्द्रा का मन-मन्दिर झलमला उठा। आश्चर्य, आनन्दातिरेक, और शंका से उद्विग्न हो उठी। पर, शीघ्र ही अपने को सम्भाल कर बोली—

'तब क्या करना चाहिये काका ? ऐसे व्यक्ति' –

दीवान ने कुछ और ही समझ कर, बात काट कर बोला—

'हाँ बेटा, ऐसे व्यक्ति का क्या ठिकाना—क्या कर बैठे ? मुझे तो सन्देह हो रहा है कि कहीं वह जङ्गलियों के साथ षड्यन्त्र रचकर राज्य के विरुद्ध कोई भारी उपद्रव न खड़ा करे। क्योंकि जङ्गली सरदार से उसका मेल हो ही चुका है। मेरी राय में, उसकी गिरफ्तारी के लिये फौरन ही सैनिक भेजे जायें।'

रानी ने उत्तर दिया—'नहीं नहीं काका, यह उचित न होगा। हमलोग चलें वहाँ शिकार खेलने। आदमियों का काफी इन्तजाम कर लीजिये। जैसा मौका देखेंगे, उचित कार्यवाही की जायेगी।' दीवान क्षणभर सोच कर बोला—

'तो···मेहमानो को भी ले चला' जाये। चन्द्रा बोली—'क्या हर्ज है।

× × × ×

मेहमान का मतलब पाठक समझ ही गये होंगे कि राजीव लोचन और उसकी मौसी से है। जब दोनों राजधानी मे आए, तो राजसी ढंग से इनका स्वागत हुआ। राजमहल मे राजकुमारी से परिचय कराया गया। राज्य के अतिथिगृह मे बड़े आदर से ठहराये गये। दीवान जी प्रायः चेष्टा करते रहते कि राजीव राजकुमारी से हेल-मेल बढ़ाता रहे। कई वार उसे समझाया गया, पर नमक की पुतली को समुद्र की थाह लेने का साहस ही कैसे होता? उसे दरवार के नाम से ही बुखार चढ़ आता। मौसी जी बहुत कुरेदतीं, तो रो-कलप कर कुछ दूर आगे बढ़ता, फिर हिम्मत हार कर किसी शराबखाने मे ढुक जाता।' और खुद लौटता भी नहीं, जव चपरासी-प्यादे जाते तब 'सीनाघाटी रियासत के होनहार महाराज' को बेहोशी की हालत मे उठा लाते। और जव जंगल मे शिकार खेलने जाने को उसे तैयार किया गया तो उसकी आत्मा कूॅच कर गई। मौसी के पैर पकड़ कर बोला—

'मौसी, मै वाज़ 'आया रानी व्याह करके राजा बनने से। वाप रे वाप, भालू-सिंह से भरे जगल मे शिकार खेलने जाना होगा? दुहाई है तुम्हारी 'जैसा हूॅ वैसा ही रहने दो। लौट चलो कलकत्ता, नहीं तो...,' मौसी ने देखा कि किनारे लगी नाव अभागा डुवाना चाहता है। ऑखो मे ऑसू भर कर बोली—

'अच्छा, तुम जाओ कलकत्ता, मैं इधर गले में फाँसी लगा कर न मर जाऊँ तो कहना।' मौसी ही राजीव की सब कुछ थी। उसके बिना वह कहीं भी अकेले नहीं रह सकता था। रियासती-रईसी ढंग में पला, युवक होने पर भी वह बच्चे से भी गया बीता था। मौसी की आँचल तले सदैव खेलनेवाला युवक-शिशु उसकी मृत्यु की बात सुनते ही काँप उठा, और, और भी जोर से उनके पाँव पकड़ बोल उठा—

"अच्छा बाबा जो तुम कहोगी, वही होगा। कृपा कर मरने की बात मुँह से न निकालो।"

जङ्गल जाने के पहले दीप ने विजयकुमार को नर्मीना घाटी आने के लिये जरूरी तार भेज दिया था। जब वह आया तो सब-के-सब शिकारगाह रवाना हो चुके थे। राजमहल में केवल लीला थी। मिलते ही दोनों मुस्कुरा उठे। वह अजीब-सी पहली मुलाकात कुछ अजीब तरह ताजा हो उठी। फिर तो दोनों घुल-मिल कर देर तक बातें करते रहे। राज्य की वर्तमान परिस्थिति, और दीवान के दाँव-पेंच पर भी सलाह-मश्विरे हुए। तय हुआ कि ऐसी नाजुक अवस्था में, हम लोगों को भी वहीं चलना चाहिये। नायब दीवान मुचकुन्द सिंह को राजधानी की देखभाल के लिये समझा बुझाकर, विजय और लीला जङ्गलपुरी चल पड़े। और इस प्रकार, नकली कुमार

दीप और नकली कुमारी चन्द्रा रास्ता चलते-चलत किसी और ही मंजिल पर आ पहुँचे।

१०

जङ्गलपुरी के सरदार जंगी को ज्यो ही पता चला कि उसका त्राणदाता 'शिकार महल' मे आया हुआ है, अपने सैकड़ो साथियो सहित आ पहुँचा और भक्तिपूर्वक 'देवता बाबू' कहकर दीप का स्वागत किया। इतने दिनो पर रियासत के एक उच्च कर्मचारी को अपना रक्षक जानकर जङ्गलियों की प्रसन्नता का पारावार न रहा। पर जैसे ही मालूम हुआ कि रानी और दीवान भी लाव-लश्कर के साथ आ रहे हैं, प्रतिहिंसा की भावना से वे पागल हो उठे। सब-के-सब गॉवो मे फैलकर विद्रोह की तैयारियॉ करने लगे।

दीप का मन अब और भी बेचैन हो उठा। सिपाही—पलटन के साथ रानी और दीवान का आना उसे नागवार गुजरा। रानी पर उसे भरोसा था, पर चक्रचाली दीवान के आतंक से सदा सशंकित रहता था। पर विवाह के नए आयोजन के प्रति रानी की चुप्पी देखकर उसका मन उद्विग्न हो रहा था। यही प्रमुख कारण राजधानी से उसके भागने का था। और इसीलिये वह रानी से भागना चाहता था। भाग चला जङ्गलियो के भीतरी गॉव की ओर—भयङ्कर पहाड़ियो और पथरीली पगडण्डियो से होने

हुए। दीवान का गुप्तचर घात में लगा ही हुआ था। अपने में डूबा दीप ज्यों ही एक घनी झाड़ी में पहुँचा कि फरसे का एक गहरा वार हुआ, और वह चिल्लाकर गिर पड़ा। पास ही के कन्दरे में कुछ जंगली परामर्श कर रहे थे। चिल्लाहट सुन कर झट से बाहर आ गये। गिरे हुए शिकार पर जैसे ही घातक ने दूसरा वार करना चाहा कि दौड़कर सब उस पर टूट पड़े, और काफी मरम्मत के साथ उसे बाँध, और बेहोश—घायल दीप को उठाकर सरदार के पास पहुँचे। अपने 'देवता बाबू' की ऐसी अवस्था देख, और घातक से सब हाल जानकर पहले से ही प्रति-हिंसापीड़ित जंगलियों का क्रोध और भी उबल उठा। जंगी ने जंग का बिगुल बजा दिया। निश्चित संकेत के अनुसार गाँव-गाँव से हजारों की तायदाद से जंगल निवासियों ने 'शिकार महल' पर धावा बोल दिया।

दुपहरी के बाद का समय है। एक बड़े वटवृक्ष के तने से टासना लगाये जङ्गलियों का गुरू जुगेसर काका बैठा है। पास ही बरछा ताने जङ्गी सरदार खड़ा है रोब के साथ। बीच में रानी, दीवान, विजय, लीला, राजीव, और उसकी मौसी तथा सिपाहियों को घेर कर कई हजार जंगली—हाथों में फरसा, भाला, धनुष-कमान लिए—खड़े हैं—बातचीत चल रही है।

जुगेसर—'हाँ तो दीवान' अब सिर्फ यह बता दें, मीनाघाट की प्रजा—खास कर हम लोगों-पर किसके हुक्म से अत्याचार होता है ?'

जंगी—'बस, यहीं आखीरी सवाल है। इसके बाद जो होना है, वह होकर ही रहेगा। अब तक तुम लोग हमारे भाग्य का फैसला करते रहे, आज हम लोग तुम्हारे भाग्य का फैसल करेंगे।'

दीवान थका हुआ—परेशान नज़र आ रहा था। जंगलियों के प्रश्नों के उत्तर देते-देते नहीं शायद, बल्कि अपने को हर तरह अपमानित और हर तरह घिरा हुआ पाकर। उसका सारा क्रोध, अभिमान, रोब, राज्याधिकार—मद जैसे लुप्त हो चुके हो। खूं-ख्वार शेर लाचार हो चुका था। सबसे दुख की बात उसके लिये यह हुई कि रानी की आज्ञा से सेना ने हथियार डाल दिये थे। दीवान आखिरी झपट्ट की सोच रहा था। जंगी ने कड़क कर फिर पूछा—

"क्यो दीवान, जवाब देते हो या नहीं ?"

जुगे०—'नहीं तो हम तुम्हारी इस चुप्पी को ही जवाब समझ लेगे।'

विषदन्त तोड़े हुए नाग की तरह—धीरे-धीरे सर उठाकर—शायद जीवन मे पहली बार—कोमल आवाज से—दीवान ने अन्तिम ब्रह्मास्त्र छोड़ा—'भाइयो, मैं आपके इस सवाल का क्या जवाब दूँ ? मछली फँसानेवाली बंसी की डोरी रहती है शिकारी के हाथ मे। मछली का भोग लगाता है वही या उसके अपने—सगे. लेकिन बंशी बेचारी सिर्फ़ बँधी हुई होने के कारण बदनाम

है। वही हाल किसी राज्य के दीवान या मंत्री का है। आप—हमारे—जंगली भाई इतने नासमझ नहीं कि इतनी मोटी सी बात भी न समझें।'

दीवान के इस कूट-उत्तर से जंगलियों में एक विचित्र हलचल मच गई! हर तरफ़ काना फूँसी और धीरे-धीरे वाद-विवाद का हल्का कोलाहल होने लगा। जंगी जोर से कुछ बोला। इस पर फिर वही सन्नाटा छा गया।

जुगे०—'तो तुम जो कुछ भी करते हो, किसी के हुक्म से?'

दीवान—'तो क्या मैं नानागाट का राजा मैं हूँ जो अपने हुक्म से कुछ करूँगा?'

जुगे०—'घुमाकर कहना छोड़ो, साफ़-साफ़ बतलाओ—कौन है जिसका उस राज्य में सब तरह का हुक्म चलता है?'

दीवान—(झिझकते हुए, रानी की ओर बताकर) 'रानी को छोड़कर और कौन हो सकता है?'

इसके बाद जंगी के ताली बजाने पर एक ओर से घातक को बाँधे हुए दो जंगली और सर तथा हाथों में पट्टी बाँधे दीप ने प्रवेश किया। दीवान की रही-सही आशा भी जाती रही। उसका दाँया हाथ पाकेट से जा लगा। दीप ने मुस्कुराते हुए कहा—

'जय हो दीवान जी, एक सवाल मेरा भी है। क्या यह घातक भी रानी की आज्ञा से ही मुझे मारने को आपने भेजा

था ?" इस पर दीवान ने झट पाकेट से पिस्तौल निकाल कर दीप पर चला दिया। साथ ही बागी सरदार का बरछा भी चमका। गोली सनसनाती हुई बेलाग निकल गई, किन्तु बरछा खच् से दीवान की छाती फोड़कर पीठ में निकल गया। अभागा आह भी न कर सका, सारे दाँव-पेंच को समेटकर कटे वृक्ष की तरह गिर पड़ा।

११

कहानी खत्म हुई। और जो कुछ शेष हो, पाठक कल्पना से पूरी कर लें।

———

कहानी

डबल डाका

असहयोग-आन्दोलन के आरम्भ में जब क्रान्ति-दलवाले अपनी गुप्त कार्यवाहियों से हलचल मचाए हुए थे, उस समय के एक 'इन्फॉर्मर' जो स्वदेशभक्तों के विरुद्ध ब्रिटिश-पुलिस को गुप्त खबरें पहुंचाया करता था, की मजेदार कहानी है, १९२५ के 'हिन्दूपञ्च' कलकत्ता, में प्रकाशित हो चुकी है।

—एक—

आज शहर मे अजीब हलचल है। लोगो की जबानों और कानों पर एक ही चर्चा है। चौक से झील की ओर जो सड़क गई है, उस पर सैकड़ो की भीड़ लपकी जा रही है। मोटरो, साइकिलो, तागों और गाड़ियो का तॉता बँध रहा है। असलियत जानने की इच्छा से एक परदेशी ने चौक के एक हलवाई-जो तीन-चार साथियो सहित गांजे का दम लगा रहा था-से पूछा—'भाई यह कैसी चहल-पहल है?' उसने उत्तर दिया—'अजी महाशय, डाकू पकड़े गये हैं। नगर के नामी दारोग़ा झुटकुन सिह और उनके नायब ने पकड़ा है। उन्हीं को देखने लोग दौड़े जा रहे है। (दम मारकर) हम भी घटनास्थल से ही आ रहे है। बड़े जबरदस्त डाकू है साहब! पूरे पचहत्थे जवान—डेढ़ डेढ़ वालिस की मूँछे—हाथो मे साढ़े तीन-तीन हाथ के पिस्तौल हैं और.... '

परदेशी बात काट कर बोला—'साढ़े तीन हाथ के पिस्तौल? यह तो बंदूक से भी बड़ी हुई।'

हलवाई—नहीं जी, है तो पिस्तौल ही। बात यह है कि जैसे जवॉमर्द डाकू वैसे ही उनके हथियार भी हैं।'

हलवाई का दूसरा साथी बोला—'जमादार साहब कह रहे थे, बड़ी मुश्किल से असामी पकड़े जा सके हैं।'

परदेशी—'आप लोग बता रहे हैं, डाँकू पचहत्थे जवान हैं फिर गिरफ्तार किस तरह हुए? क्या आप लोगों ने आँखों से देखा ?'

हलवाई—'तो क्या झूठ कह रहे हैं। अभी घंटा भी तो पूरा नहीं हुआ है। हम तीनों साथी झील से स्नान कर लौटे आ रहे थे कि पास के जङ्गल से गोली छूटने की आवाज़ आई। दौड़कर वहाँ पहुँचे तो देखकर दंग रह गये।'

परदेशी—'क्या-क्या देखा?'

हलवाई का दूसरा साथी—'देखने का ताव ही कहाँ रहा भाई साहब! (दम लगाकर) दिमाग़ ही चकरा गया।'

तीसरा साथी—'वाह, डाकुओं के बत्तर नली पिस्तौल के निशाने को, दारोगाजी के एक-सौ-पचीस नली वाले पिस्तौल के निशाने किस सफ़ाई से काट रहे थे कि वाह रे वाह!!'

जिज्ञासा-तृप्ति के बदले, गँजेड़ियों की बेसिर-पैर की बातों से बेचारा परदेशी घबरा कर उठ खड़ा हुआ। मसखरों ने शिकार हाथ से निकलता देखकर बोल कसना शुरू किया—

हलवाई चिल्लाया—'यही है, यही है, पकड़ो जाने न पावे'—

दूसरा साथी—'रस्सा तुड़ाकर भागा जा रहा है।'

तीसरा साथी—'काटेगा, बाँध दो खम्भे में।'

अब तो परदेशी को भागने के सिवा दूसरा चारा नहीं रहा। लपका बेचारा एक ओर। गँजेड़ियों ने भी

जोरो से चिल्लाना शुरू किया। झील की तरफ़ झटकती हुई भीड़ का एक हिस्सा इस ओर भी आकर्पित हुआ। सबकी दृष्टि भागते परदेशी और गँजेड़ियो की ओर जमने लगी। लोग रुकने लगे। सड़क जाम हो गई। इतने मे ही, उधर से, बड़े जोरो से टनटनाती हुई साइकिल की घंटी और घवराये हुए कर्कश स्वर से 'वचो' 'हटो' की आवाजें सुनाई दीं। जव तक लोग बचे-सम्हलें कि धक्को से वल खाती-लोगो को ठोकरें लगाती हुई एक साइकिल धड़ाम से हलवाई की दूकान से जा टकराई। और उसके डवल—अलवेले सवार मिठाई के ढेरो का भुरकुस वनाते, थालो को झन-झनाते, तख्तो को उलटते-पलटते धमाक से तले-ऊपर-नीचे की नाली मे जा पड़े। ठहाकों की गोलेबारी छूटने लगी। कठिनाई से लोगो ने दोनो सवारो को उठाया। एक थे दारोगा भुटकुन सिह। तमाम वर्दी कीचड़ मे सन गई थी। साफ़ा अंजर-पंजर ढीले किए हुए दर्शको का फुटबाल वन रहा था। साइकिल बेतरह जख्मी होकर उत्सुक भीड़ के पैरो को जखमी बनाती पड़ी थी। दूसरे सवार थे दारोगा जी के गोयन्दा पं० नरछुत तिवारी। दोनों के सर, कंधो, कमर, और टागो मे कड़ी चोट आ गई थी। शरीर कई स्थानो पर खुरच गया था। कही-कही से खून भी वहने लगा। फौरन ही पुलिस के कई जवान आ गये, और घायल देवता को दूत सहित उठा ले जाकर सेवा-सुश्रूषा करने लगे।

—दो—

श्रीमान् नरकुन तिवारी 'अपटुडेट'—प्रदर्शनी के एक खासे जीव हैं। वैसे पढ़ने-लिखने में आपका उतना सरोकार नहीं रहा, मगर अंगरेज़ियतके ऊपरी कायल ज़रूर हैं। मतलब यह कि वेष-भूषा, बोल-चाल और ढंग-ढब में तिवारी जी अंगरेज़ों की नकल की नकल उतारने की सदैव असफल चेष्टा करते रहते हैं। प्रायवेट खान-पान भी कुछ वैसा ही है। हाँ कि इसमें आपका विशेष खर्च-वर्च नहीं होता। बा० बुदकुन सिंह दारोगा सिखाये जाते हैं। परन्तु हैं आप ब्राह्मण सपूत। घर पर स्नान, टीका-चन्दन, पूजा-पाठ के अतिरिक्त लघुशंका आदि के समय कानपर जनेऊ चढ़ाना बहुत कम भूलते हैं। इनके पिता पंडित हिरामन तिवारी यजमानी-वृत्ति के अलावा, कुछ वैद्यक का कारोबार भी कर लेते हैं। छोटे तिवारी प्रकट में तो बाजार की अनेक वस्तुओं की दलाली करते हैं, परन्तु गुप्त रूप से पुलिस में 'इन्फॉर्मर' हैं—दारोगा बुदकुन सिंह के तो खास गोयन्दा हैं। इसलिये, इधर-उधर की छोटी-से-छोटी खबरें भी अपने सरदार को पहुंचाने में नहीं चूकते। कभी-कभी अपना उल्लू सीधा करने के लिये, निरपराधों को भी आप सताने से बाज़ नहीं आते। किसी को किसी से बदला लेना है, बस तिवारी जी उसके काम आ जाते हैं। इन कारणों से लोगों का नाक में दम हो रहा है।

पुलिसके भय से, प्रतिकार का कोई उपाय किसी से नहीं

लोग सिकन्दरपुर के झीलवाले जंगल में चलें। वहीं गढ़े के पास चानमारी की जाय।"

दूसरा—"मगर गोलियों की आवाज़ सुनकर कोई आ जाये तो?"

एक—"ऊँह! एक तो वह स्थान शहर से दूर है, तिस पर मीलों तक जंगल ही जंगल है। अगर कोई आया भी तो ऐसा ग़ायब हो जायेंगे, कि पता लगाना मुश्किल।"

दूसरा—"बस, तब यही ठीक रहा।"

बाहर, तिवारीजी की हालत खुशी, डर, आश्चर्य और उमंग के मारे बदतर हो रही थी।

"ओह! ऐसी रहस्यपूर्ण ख़बर! जूते खोलवाऊँगा आज झुट-ठुन से!" उद्वेग के मारे शीघ्रता से, उड़ते हुए चल पड़े। अँधेरा काफ़ी हो चुका था। रास्ता ठीक से नहीं सूझता था। मगर तिवारी जी के पैर की लगाम बेतरह ढ़ीली हो पड़ी थी। कुछ दूर आगे चलने पर एकाएक एक जगह की ऊबड़-खाबड़ में आपका चरण-कमल इस तरह फँसा कि धडाम से उलट कर ज़मीन सूँघने लगे। चोट भी काफी लगी। टाँगों में मोच आ गयी। मगर, उत्साह के वेग में तकलीफ को उड़ंछू कर सम्हल कर फिर आगे बढ़े। सोचते चले कि "ऐसी अद्भुत खबर है। चलूँ, सीधे कलक्टर साहब के पास। नहीं नहीं; पुलिस के बड़े साहब के पास ही चलना ठीक है।"

खाली मकान के दालान में घुस पड़े। तिवारीजी ने दीवार की आड़ से, ज़रा-सा झाँककर देखा। दोनों कपड़े बदलकर, चेहरे में नकली दाढ़ी-मूँछ लगा रहे थे। ये फुर्ती से से पीछे हट गये! इनके जी में जोश का तूफान आपे से बाहर होने लगा। इतने में ही दोनों व्यक्ति वहां से निकल कर आगे बढ़े। तिवारी जी धड़कते कलेजे को दबाकर, गुप्त रूप से लगे उनका पीछा करने। कई गलियों और सड़कों को पार कर वे एक उजाड़ मुहल्ले के एक मकान में घुस गये और द्वार भीतर से बन्द कर लिया। तिवारीजी भी धीरे-धीरे जासूसी चाल से चलते हुए किवाड़ से कान लगाकर खड़े हो गये। अन्दर, दोनों में इस प्रकार बातें होने लगीं।

एक—'अच्छा हुआ किसी ने हम लोगों पर सन्देह नहीं किया।'

दूसरा—'सन्देह करता कैसे? हम लोग सावधानी से जो चल रहे थे। अच्छा भई, यह तो बतलाओ, नरछुत तिवारी सचमुच पुलिस का गोयन्दा है?'

दूसरा—"हाँ, मुटकुन सिंह दारोगा को, इधर-उधर की खबरें पहुँचाता है।"

एक—"तब तो, इसे भी खतम करना होगा।"

दूसरा—"जरूर करना होगा। मगर, पिस्तौल चलाने का अभ्यास कर लेना चाहिये।"

एक—"सोच लिया है, कल ठीक दस बजे दिन से हम

लोग सिकन्दरपुर के झीलवाले जंगल मे चलें। वहीं गढ़े के पास चानमारी की जाय।"

दूसरा—'मगर गोलियो की आवाज सुनकर कोई आ जाये तो?"

एक—"ऊँह। एक तो वह स्थान शहर से दूर है, तिस पर मीलो तक जंगल ही जंगल है। अगर कोई आया भी तो ऐसा गायव हो जायेगे, कि पता लगाना मुश्किल।'

दूसरा—'वस, तब यही ठीक रहा।'

वाहर, तिवारीजी की हालत खुशी, डर, आश्चर्य और उमंग के मारे वदतर हो रही थी।

"ओह। ऐसी रहस्यपूर्ण खबर! जूते खोलवाऊँगा आज भुट-कुन से!' उद्वेग के मारे शीघ्रता से, उड़ते हुए चल पड़े। अँधेरा काफ़ी हो चुका था। रास्ता ठीक से नहीं सूझता था। मगर तिवारी जी के पैर की लगाम बेतरह ढ़ीली हो पड़ी थी। कुछ दूर आगे चलने पर एकाएक एक जगह की ऊबड़-खावड़ मे आपका चरण-कमल इस तरह फॅसा कि धड़ाम से उलट कर ज़मीन सूँघने लगे। चोट भी काफी लगी। टॉगो में मोच आ गयी। मगर, उत्साह के वेग मे तकलीफ को उड़ंछू कर सम्हल कर फिर आगे बढ़े। सोचते चले कि "ऐसी अद्भुत खबर है। चलूँ, सीधे कलक्टर साहब के पास। नहीं नहीं; पुलिस के बड़े साहब के पास ही चलना ठीक है।"

फिर ध्यान आया कि "मुमकिन दारोगा ने उतने दिनों की—ख्वाब कर दस्तरख़ानी—कोशिश की है। बेचारे का नाम हो जायेगा; इनाम मिलेगा। मेरी भी चाँदी होगी। चलूँ उसे ही ख़बर दूँ।"

यही सोचते हुए आप जैसे ही गली पार कर सड़क पर आना चाहते थे, कि कूड़े की टीन से बेतरह टक्कर खा गये। जब तक सम्हलें, तब तक औंधे मुँह गिर पड़े, और ऊपर से टीन का सारा कूड़ा फैल गया। मारे बदबू और चोट के बेचारे अधमरा हो गये। कुछ सेकन्डों तक इसी तरह प्राणायाम करते रहे। फिर, झाड़-झूड़ कर किसी तरह खड़े हुए। तबीयत झुँझलाई, तो लगे म्युनिसिपैल्टी वालों का गोबोशार करने। तकलीफ़ के मारे डगन-चाल से चलना कठिन मालूम पड़ा। मगर, ध्यान में आया कि जासूसी—कहानियों में इससे भी बढ़-चढ़ कर जासूसों पर कठिन विपत्तियों की बातें पढ़ी हैं। तब मन को दिलासा देने और गर्व अनुभव करने लगे। उत्साह की स्फूर्ति आ गई। फिर सोचा, घर से कपड़े बदल लूँ, तब दारोगा जी के यहाँ चलूँ। मगर थे आप अक्किल के पटपट। ख्याल आया, कि इसी तरह चलने से कुछ और ही प्रभाव रहेगा। बस, सीधे मुँह फेरा थाने की तरफ़। जैसे ही कुछ दूर आगे बढ़े कि एक लड़के ने जो इनकी विचित्र सूरत देखी तो डर के मारे 'भूत-भूत' चिल्ला उठा। चिल्लाहट सुनकर, पास-पड़ोस के और कुछ राहगीरों ने इन्हें घेरा। तिवारीजी नई आफ़त देख कर भाग चले। लोगों ने खदेड़ना शुरू

किया। ग़नीमत हुई कि थोड़ी ही दूर पर दारोग़ाजी का मकान था। तिवारीजी बेतहाश दौड़ते हुए उस कमरे में जा पहुँचे, जिसमे दारोग़ाजी का लड़का स्कूल का पाठ याद कर रहा था। इनको एकाएक भूत की तरह पहुँचते देख, वह जोरों से डर कर चिल्ला उठा। उसी समय बाहर की भीड़ ने भी पहुँचकर हल्ला मचाना शुरू किया—"भूत है भूत। चोर है, चोर—दारोग़ा जी!" तब तक कई नौकर, सिपाही और खुद दारोग़ाजी दौड़ पड़े और भूत को पछाड कर उसका भुरकुस निकालने लगे। तिवारी कँहर कँहर कर चिल्लाने लगे—"बाप रे बाप, दादा रे दादा—दारोग़ाजी बचाइये......हम हैं तिवारी...... ।" दारोग़ा ने गौर से पहचाना तो बोल उठे। "ओह, बडा धोखा हुआ; छोड़ो छोड़ो, यह तिवारी हैं ......हमारे खास आदमी।"

तब तक नरछुत की काफी दुर्गति हो चुकी थी। इतनी कस कर मार पडी कि न पूछिए। दारोगा ने सोचा, कम्बख्त को मरना ही था तो मेरे यहाँ क्यो आया। घबराकर डाक्टर को बुलवाया। मरहम-पट्टी की गई। टॉनिक-डोज के अलावा इन्जेक्शन भी किया गया।

कुछ देर बाद, तिवारी जी की तबीयत कुछ हरी हुई। तब बडे तपाक के साथ यथोचित नमक-मिर्च मिलाकर सारी बातें सुनाने लगे। सुनते ही दारोगा जी खिल गये। दोस्त को गले

लगा लिया। इसके बाद दोनों बहुत देर तक षड्यन्त्र बाँधते और मन के लड्डू खाते रहे।

दूसरे दिन सवेरे आठ ही बजे जंगल में गुप्त पहरा पड़ गया। दारोगा जी और तिवारी जी पिस्तौल लिये मौक़े की ताक में रहे। जमादार तथा १५ सिपाही, लम्बी लाठियाँ पकड़े छिट-पुट दबके हुए थे। ठीक दस बजते-बजते, दो नवयुवक गोलवाली पगडंडी से जंगल के बीचवाले मैदान में पहुँचकर इधर-उधर देखते हुए नहर के किनारे जा बैठे, और मेढ़कों का तमाशा देखने लगे। फिर पॉकेट से पिस्तौलें निकालकर दोनों ने अपने-अपने बगल में ज़मीन पर रख लिया। बड़ी सावधानी से धीरे-धीरे पंजों के बल चलकर सिपाहियों ने एकाएक नवयुवकों को धर दबाया। दारोगा और तिवारी ने दोनों की मुश्कें कस लीं। पिस्तौलों को बिना जाँचे-समझे, बड़ी सावधानी से रूमाल में लपेट लिया गया। फिर निश्चय हुआ कि बड़े साहब को झट से ख़बर दी जाय, तब तक डाकू यहीं, कड़े पहरे में रहें। ऐसा ही किया गया।

जमादार सिपाही पहरे पर रहे, और तिवारी को पीछे लादकर दारोगा जी साइकिल पर उड़ चले। तब तक न जाने कैसे बिजली की तरह शहर भर में इस अनोखी घटना की ख़बर फैलने लगी थी। उत्सुक जनता की भीड़ घटनास्थल की ओर उमड़ उठी। उसी में डबल-साइकिल सवार की कलाबाज़ी का दृश्य पहले ही देखा जा चुका है।

पुलिस के बड़े साहब को जैसे ही ख़बर हुई, फौरन मोटर द्वारा

असामी को थाना पहुँचा आए। अस्पताल में भुटकुन और तिवारी से मिलकर बड़ी प्रसन्नता प्रगट की। साथ ही तरक्की और ईनाम का आश्वासन भी दिया।

—पाँच—

दूसरे दिन पेशी हुई। आज दारोगा जी और तिवारी जी का क्या पूछना! मानो आकाश पर चढ़ रहे हो। इनकी आज की अनोखी मुद्रा का वर्णन करना किसी मसखरे कवि का ही काम है। दारोगाजी ने, बड़ी सावधानी से साफा बाँधा। तोंद की शरारत और कुछ जल्दीबाजी से, रह-रहकर कोट के बटन खुल जाने लगे, तो आप बड़े झुँझलाए। दो चार होलैया सुना दी। चलते समय दारोगाइन ने बहुत दिनो की चुप्पी के बाद मुसकराहट के नज़राने के साथ अपने हाथ से पान चभाया। दारोगा जी घोड़े पर सवार होकर कचहरी चल पड़े। इधर तिवारी जी ने विचित्र फैशन मे अपने को सजाया। चुस्त पाएजामे के ऊपर काले रंग का हौस पायतावा चढ़ाया। आँखो मे बूढ़ी चाची से काजल कढ़वा कर रंगीन चश्मा लगाया। गले मे रेशमी रूमाल लपेटा, माथे मे चन्दन पर लाल बिन्दी चमकाई। कन्धे पर दादा जी के समय का रंगीन दुशाला, हाथ मे मिर्जापुरी लट्ठ, और सिर पर हैट रखा। यह इसलिये कि धूप कड़ी थी। छाता बाबूजी कहीं ले गये थे। मगर पाकेट मे मोड़-माड़ कर फिल्डकैप भी रख लिया, कि इजलास पर जाते ही हैट उतार कर इसे पहन

दूँगा। घर की प्रदर्शिनी का एक खास नमूना—इनके पिताजी का चिचाद़पाजा कामदार दिल्लीवाला जूता था: बस उसे पहनकर, एक बार आईने में अपना नूरानी चेहरा और लासानी फैशन देखकर गद्‌गद् हो गये। बाजार में रोब के साथ इधर उधर ताकते चले। लोग इनकी विचित्रता पर—इनकी ओर देख कर मुस्कुराते, तो यह उन्हें मूर्ख समझते थे कि 'आज मेरा फैशन देखकर सभी दोनों उँगली फाड़ रहे हैं। मगर अभागे नहीं जानते कि यह मेरा खास खुफिया वेश है।' अँकड़ते हुए कचहरी पहुँचे।

इजलास के बाहर भीड़ का क्या कहना है! डाकुओं को देखने के लिये जनता का जैसे नर-समुद्र उमड़ उठा हो। पुलिस को रह-रह कर लाठीचार्ज करने तक की नौबत आ जाती थी। इजलास के अन्दर की तमाम बेंचें भरी थीं। प्रेस-रिपोर्टरों के अलावा, अनेक सम्भ्रान्त दर्शक भी मजिस्ट्रेट की आज्ञा लेकर कार्यवाही देखने-सुनने आये थे। जैसे ही असामी पुलिस के कड़े पहरे में लाये गये, बहुतों ने युवकों को पहचान लिया। एक था प्रो० रमेश चन्द्र का लड़का दिनेश, दूसरा सुप्रसिद्ध वकील चन्द्रशेखर नारायण का लड़का शशांकशेखर था। दोनों कालेज के चुने हुए विद्यार्थियों में से, और नवयुवक नाटक समिति के प्रमुख पात्र थे। मुस्कुराते हुए युवकों ने परिचितों को प्रणाम किया। उन लोगों ने समझा शायद ये लड़के क्रान्तिदल में होंगे। तब तक पेशी शुरू हो गई। मजिस्ट्रेट ने अभियुक्तों के नाम-धाम-काम

पूछे। पेशकार ने रूमाल से खोल कर पिस्तौलो को साहब के सामने कर दिया। साहब ने युवको से पूछा—"इन्हे कहाँ से लाये ?"

एक युवक—"नवयुवक नाटक समिति से !"

मजि०—"जंगल मे क्या करने गये थे ?"

दूसरा युवक—"एक नाटक का रिहर्सल करने !"

मजिस्ट्रेट ने एकाएक पिस्तौलो मे क्या देखा कि भड़क उठे "हैस...इन्सपेक्टर, नकली पिस्तौल है ? असामी रिहा......"

कहानी

सनीचर देवता की पूजा

समाज के एक सनीचर देवता की मनोरंजक-पूजा का सुन्दर वर्णन है। 'जागरण', 'काशी' और 'मारवाड़ी अग्रवाल', कलकत्ता, में प्रकाशित।

[प्रथम विधि]

सेठ धमधूसर लाल जी, ऊपर से नीचे तक जिस प्रकार कुछ स्थूलकाय हैं, उससे कहीं चढ़-बढ़ कर उनमे बुद्धि का अजीर्ण है। हाथी के बच्चे की तरह छोटी-छोटी टाँगो के ऊपर मटकेसा पेट, दरियाई कमण्डल की तरह सिर, उर्दू कविता की नाजनीन की कमर की तरह गरदन नदारद। और इसी प्रकार मुँह, नाक, आँख, कान, भौंह आदि की भी अजीबो-गरीब-गठन देखने ही लायक है। विधाता की हास्यप्रियता का खासा नमूना-मानव-प्रदर्शन की अद्भुत वस्तु ही समझिए। जिस समय वसुन्धरा की सूधी छाती पर, आपके युगल चरण रोलर की तरह लुढ़कते हैं, वर्णन से बाहर—दर्शनीय दृश्य होता है। जिस समय खुले वदन आप साँस लेते या कहीं सौभाग्य से हँस पड़ते, तो पेटरूपी मटके की तूफानी उछल-कूद, भूमण्डल के भूकम्प का संक्षिप्त संस्करण बन जाती। चलना आपके लिये जितना कठिन था, उससे 'बैठना कहीं कष्टकर था। हरदम लाश की तरह पसरे ही रहते थे। पुराण-प्रसिद्ध-समाधिस्थ योगियो की जटाओ की तरह, आपके बालो, वस्त्रो और बिछावन वगैरह मे अनेकानेक कीटाणु-कीट बारहो मास क्रीड़ा करते रहते। लोगो को आप इतने अधिक याद हैं कि सवेरे-ही-सवेरे नाम तक लेना अनुचित समझा जाता है और अगर कहीं दर्शन हो जाये तो दर्शनार्थी समझ लेता है कि उस दिन के पापो का उसी दिन भर पूर प्रायश्चित्त हो जाएगा। समाज-सुधार के आप सवा सोलह

आप मनोचर हैं। सामयिकता और आधुनिकता से आपको उतनी ही सख्त नफ़रत है, जितनी मजाक और फ़िज़ूल खर्ची से। सामाजिक-वासना-यश-लोक के आप एक दबंग-दूत हैं। कंस के अत्याचारों की तरह रूढ़िवादी-क्रूरताओं की श्रीवृद्धि के लिये आप इस समय की नारकीय विभूति हैं। समाज का गला आपने इतने ज़ोरों से दाब रखा है कि उसका नाश और पुनर्जन्म निश्चित है। आपकी ज़बान और सलाह में वह डंक है, जिसका उपचार नहीं। आपके इस भयानक दंशन से कितने ही बेमौत मरे—और प्रायः मरते रहते हैं। व्याह में, श्राद्ध में, पञ्चायत में, काम में-काज में, मतलब यह कि प्रत्येक व्यावहारिक परामर्श में आपके नक्कारखाने के आगे दूसरों की तूती की आवाज़ मन्द पड़ जाती है। यही कारण है कि बिरादरी में आपकी पूरी धाक है। सभी डरते रहते हैं। मगर कुछ आप ही सरीखे वृद्ध-मगजों को छोड़कर, दूसरे सभी लोगों का दिल भीतर-ही-भीतर ज्वलित हो उठा है। खास कर नवयुवक-समाज आपको फूटी आँख नहीं सुहाते। उससे कहीं अधिक उनकी आँखों में आप भी ज़हरीले तीर हैं। बिचारे नवयुवक मन मसोस कर रहते, और अपनी असमर्थता पर चार आंसू रोते। कभी-कभी संघर्ष भी हो जाता। आखिर नया खून ही तो ठहरा। तिस पर क्रान्ति का ज़माना !!—विचार होने लगा कि अब दूसरे हथियारों से काम लिया जाय।

जगदीश ने कहा—"यार! यह मूजी तो बड़ा अनर्थ कर रहा है, कुछ उपाय होना चाहिये।"

कैलाश ने कहा—'खूब बनाया जाये बच्चू को, ऐसा कि जन्म भर याद रखें।"

रामप्रताप ने कहा—"हॉ भाई, हमलोगो की सभा-समितियो को कभी एक पैसा नही देता, उलटे विरोध करता रहता है।"

सोहन ने कुछ देर तक सोच कर कहा—"

"अच्छा तो रहे इस बार होली मे। रुपये भी वसूल किये जायें और छकाया भी जाये ऐसा कि कम से कम कुछ दिनों तक तो डंक अवश्य ही कमजोर पड़ जाये।"

[दूसरी विधि]

दिन भर उपद्रव मचा लेने के बाद रात की चढ़ती जवानी मे होली की आग जलाकर बाजारके लोग 'नवयुवक समिति' का नाटक देखने लगे। करीब साढ़े तीन बजे रात मे अभिनय समाप्त हुआ। दर्शक होलैया गाते, पारस्परिक छेड़छाड़ करते, सोतो को जगाते, अपने-अपने घर जाने लगे। पर्दे और नाटकीय सामान वगैरह यथास्थान सरिया देने के बाद, सोहन भी अपने चंचल सखाओं के साथ, घर रवाना हुआ। सेठ धमधूसर लाल का सब से छोटा लडका तिलौड़ीलाल भी, मण्डली की तबीयत बहलाता जा रहा था। प्रात काल की सुफेदी छिटकने मे अभी देर थी। कुछ अँधेरा था। थोड़ी दूर साथ चलकर अधिकाश लडके अपने-अपने घर चले गये। सोहन और उसके तीन-चार साथी जिनके मकान उधर ही थे, धमधूसरलाल के पास वाली गली मे

पहुँचे। तिलौकी लाल को अपने दरवाजे की ओर बढ़ते ही पैरों में किसी ठंडी चीज का स्पर्श हुआ। उसके मुँह से एक हलकी सी घबराहट की आवाज निकली। सब चौंक गये। प्रकाश ने टार्च का प्रकाश किया। देखा गया कि वह चीज सफेद कपड़ेमें खून से तरबतर कोई लाश की तरह है। अब तो तिलौकी की दहशत-का क्या पूछना! चिल्ला उठा। इतने ही में ऊपर की खिड़की खोल कर उसके बाप ने पुकारा—कौन है? सोहन ने आवाज दी —"जरा नीचे उतरिए, भारी घटना हो गई है।" क्षण-भर में हाँफते-लुढ़कते सेठजी आ पहुँचे। टार्च की रोशनी में जैसे ही उनकी दृष्टि लाश पर गई तो मारे भय के इस तरह पीछे हटे कि गिरते-गिरते बचे, और मुँह से एक कर्णकटु चीख निकल पड़ी। प्रकाशक-ने कहा—"सेठजी, यह क्या बात है? अगर आपने किसीको ऐसा दण्ड दिलवाया है, तो लाश कहीं दूसरी जगह फेंकवा देते।" घबराते हुए-बात काट कर उन्होंने कहा—"अरे छोकरा, तू मुझे फँसाना चाहता है? भगवान् जानते हैं—गंगा की शपथ, मैं कुछ नहीं जानता।"

सोहन—"मगर जनता और पुलिसवाले तो यह सब कुछ नहीं समझेंगे। आपके मकान के पास लाश मिली है, इसलिये सबोंका सन्देह आप ही पर होगा।"

किशोरी—"और हम लोग झूठ बोलेंगे नहीं, सच-सच बताना ही पड़ेगा, नहीं तो आफत आ सकती है।"

अब तो मारे भय के धमधूसरलाल की जान निकलने लगी। विचारे दरवाजे पर धम से बैठ गये, और दोनो हाथो सिर दबाने लगे। सोहनने प्रकाश से कहा—"जाओ, दौड़ते हुए थाने में खबर दो कि यहाँ खून हो गया है।" प्रकाश जाना ही चाहता था कि सेठजी ने मेढक की तरह छलाँग मार कर पकड़ लिया, और बोले—"नही बेटा, ऐसा मत करो। मै कहीं का न रहूँगा। पुलिस को न बुलाओ, किसी तरह लाश को हटा दो; जो कहोगे, करने को तैयार हूँ।"

सोहन—"हाँ, इस समय वक्त पड़ा है तो क्यों न ऐसा कहियेगा। आप बराबर हमलोगो का—क्या, सभी अच्छे कामो का—विरोध करते आ रहे हैं। हम सेवासमिति के बालचर हैं, इसलिये पुलीस को तो बुलाना ही पड़ेगा। जाओजी प्रकाश, जल्दी खबर दो।" प्रकाश फिर उद्यत हुआ। अब तो सेठजी की बड़ी दयनीय दशा हो चली। उन्होने सोहन और प्रकाश को पकड़कर बडी आजिजी से कहा—"देखो बेटा, तुम्हारे पिता से मेरी कितनी घनिष्ठता है। अब से मै कभी तुम लोगो का विरोध न करूँगा...।" इतना कहते-कहते रोआसे-से हो गये। किशोरी को जैसे दया आ गई। उसने कहा—"सोहन भाई, जब यह इतना गिड़गिड़ा रहे हैं, तो ऐसा उपाय करो जिससे यह भी बच जायँ और हमलोगो पर भी कोई आफ़त न आवे।"

बैजू ने कहा—"मगर कोई बखेडा आ ही जाय तो...?"

प्रकाश—"आखिर, जो मरा है, उसके घरवाले पता लगावेंगे ही। फिर तो हमलोगों को आफ़त में पड़ना ही पड़ेगा।"

सोहन—"एक उपाय है। अगर सेठजी इतना काफ़ी रुपया दे दें, जिससे हमलोग अपने बचाव के लिए हरदम तैयार रहें, तो अलबत्ता लाश हटा दी जा सकती है।"

सेठजी—"लो भाई अभी लो, दस-बीस रुपये क्या चीज़ है ?"

सोहन—"वाह साहब वाह! इतनी बड़ी जोखिमके लिये इतना थोड़ा रुपया ?"

प्रकाश—(ऊपर देखकर) "सेठजी जल्दी कीजिये, सवेरा होना ही चाहता है। फिर कोई आ गया तो आप जानिए।"

सेठ—"अच्छा अभी सो रुपये ले जाओ, पीछे और ले जाना।"

किशोरी—"लाऊजी, तब तो आप ज़ाहिर हो जाइएगा, क्योंकि पुलिस हमलोगों के पीछे खुफ़िया लगा देगी। आपसे रुपये की सहायता की बात जान लेने पर...आप ही समझिए कि वह क्या ख्याल करेगी।" इतने में किसी तरफ़से खाँसने की आवाज़ आयी। सोहन ने कहा—"कोई आ रहा है; सेठजी जल्दी कीजिये। कम से कम दो हजार रुपये अभी दीजिए, नहीं तो अगर हमलोग खबर न भी देंगे, तो भी पुलिस को लाश का यहाँ रहना मालूम हो ही जायगा।" अन्त में बहुत 'ना' 'नू' करते और रोने-कलपने के बाद १५ सौ पर मामला

तय हुआ। सेठजी झट से घर मे जाकर उतने के नोट ले आए। टार्च की रोशनी से जॉचकर सोहन ने पास मे रख लिया और सेठजी को कहा—"आप अब भीतर जाइए, और जरा देर से दरवाजा खोलियेगा।" बिचारे हक्के-बक्के तिलौड़ीको बगल मे दबा कर सेठजी अपने दरबे मे बन्द हो पड़े। इधर, इन मसखरो ने लाश का स्वांग बनाया। अरथी मे सजाकर 'राम नाम सत्य है' कहते हुए बाजारो मे फिरने लगे। इतने मे प्रातःकाल हो गया। सूर्य भगवान के दर्शन हुए। लोग सड़को पर धुरखेली का उपद्रव मचाने लगे। बहुत से मुर्दे के स्वाग मे सम्मिलित होकर गंगाजी तक गये।

दोपहर के बाद धमधूसरमल को पता चला कि लाश नकली थी और वह बेतरह ठगे गये॥

—o—

[तीसरी विधि]

महीनो तक लोग उनकी सूरतको—भरपेट—तरसते रहे। बस, घड़ी भर दूकान पर अपनी अनुपम झलक दिखाते, और नही तो घोसले मे ही घुसे रहते। अगर रास्ते मे कोई मन की पूछता तो टाल देते या कहते कि "तबीयत खराब है।" फिर तुरंत ही आगे लुढक पड़ते। देर तक किसी से बातें करने का उनका जी नहीं चाहता। सब—बाहरवालोसे कन्नी कटाए रहते। पञ्चायत मे भी जाना-आना छोड़ दिया था। झुँझलाहट व

को गुलामी सिखा दी है। पूजा-पाठ, व्रत-त्यौहार, मन्दिर, यज्ञ, होम, जप, ईश्वर धर्म ये सब क्या हैं? मुक्ति पाने के साधन! कहा गया है कि इन पर भरोसा करके मनुष्य संसार-सागर से छुटकारा पाता है। इस प्रकार, जो दूसरे पर—दूसरे की शक्ति पर, भरोसा करना सीखते आये हैं, वे अपने पर कैसे भरोसा करेंगे? और जब तक अपने पर भरोसा नहीं करेंगे, स्वाव-लम्बी—स्वराज्य के योग्य कैसे हो सकते हैं?'

राजकुमार—'तब योगसाधना क्या है? इतने योगी जो योगसाधना द्वारा मुक्ति की कामना करते हैं, सो?'

चाचा—'योगसाधना तो एक प्रकार के व्यायाम का आध्या-त्मिक नामकरण मात्र है। और मुक्तिकामना करनेवाले योगी तो स्कूली-परिश्रम से देह चुरानेवाले विद्यार्थी की तरह हैं—जो मानव धर्म—सांसारिक-कर्तव्य में आलस करके, आराम के लिये कहीं भागना चाहते है। नहीं तो जैसा कि मैंने पहले कहा है—वे आत्महत्या करनेवाले मूर्ख आत्म-ज्ञानी हैं।'

राजकुमार—'तो सच्चा योगी कौन है?'

चाचा—'ड्राइवर!'

राजकुमार (आश्चर्य से) 'ड्राइवर? किसका?'

चाचा—'मोटर का, बस का, लारी का, रेल का, जहाज का, टैंक का, हवाई जहाज का। जानते हो, इन बेचारे सच्चे साधकों के हाथ में कितनों की जानें रहती हैं। तनिक चूके और गये! मगर ये

कितने सावधान रहते हैं। अतएव, इस युग मे यही सच्चे अर्थ में योगी हैं।'

(५)

एक दिन चाचा स्टूडियो देखने चले। इन दिनो (सन् ४०-४१ मे) स्थानीय अधिकाश स्टूडियोज मे वम बोल रहा था। हरीसन रोड-चितपुर रोड के चौराहे पर ट्राम की प्रतीक्षा मे देर तक खड़े रहे। जो आती, खचाखच भरी हुई। रुकती भी तो ५ उतरते १० चढ़ते, १० धक्कमधुक्की करके रह जाते। कुछ फुर्तीले वहादुर ऐसे भी होते, जो लपक कर पॉवदान पर ही लटक जाते। चाचा ने कई बार चढ़ने की चेष्टा की; पर सफल न हो सके। कई धक्के खाने पड़े; एक-दो बार तो गिरते-गिरते वचे। अन्त मे उन्होने सोचा सहूलियत, सुविधा और सज्जनता की आशा छोड़, उसी टेकनिक से काम लेना चाहिये। बस, इस बार जैसे ही ट्राम ने फुटपाथ का आलिगन किया कि फुर्तीलो के फुर्ती दिखलाने के पहले ही, चढ़नेवालों की भीड़ चीरते और उतरनेवालो को ठेलते, चाचा झट ट्राम मे चढ़ बैठे। दो-तीन के पैर दब गये और कुछ को धक्के खाने पड़े। उन लोगो ने इन्हे बुरा-भलाकहना शुरू किया। पर, चाचा अनसुनी कर गये! ट्राम चल पड़ी। कोल्हूटोला मोड़ पर जैसे ही लेडी सीट की एक जगह खाली हुई कि आप चट आसीन हो गये। दूसरी सीट मे एक एंग्लो इण्डियन बुड्ढी बैठी थी। तमककर बोल उठी—"ओ, नो-नो; जनाना सीट

८

उठ जाव।" क्या करते, चाचा खड़े हो गये।

धर्मतल्ला में ट्राम बदलते समय चाचा ने देखा कि, यहाँ तो और भी मुश्किल है। चढ़ना और उतरना दोनो, शत्रु व्यूह में घुसने के दाँव-पेंच से कम नहीं है। दो मे असफल होने के बाद, तीसरी में चाचा चढ़ ही तो गये। मगर हरीसन-चितपुर-मोड़ से कहीं ज्यादा परेशानी उठानी पड़ी। पसीने से तर-बतर हो गये। भीड़ इतनी थी कि भीतर लोगों का बदन से बदन छिल रहा था और बाहर पाँवदान पर भी यारो में धक्कम-धुक्की मच रही थी। कुछ दूर बढ़ने पर थके हुए चाचा बैठने की तरकीब सोचने लगे। नजर पड़ गयी लेडी सीट पर। देखा, दो मर्द महाशय विराजमान हैं। और जब ट्राम-स्टेशन आता तो दोनो देख लेते कि कोई सीट की अधिकारिणी तो नहीं आ रही है। चाचा धीरे-धीरे उस-नीति का सहारा लेकर उनके पास जा पहुँचे। थियेटर रोड की मोड़ पर ट्राम ज्यो ही रुककर चलने लगी कि चाचा ने कहा "लेडी...लेडी सीट।" वे दोनो बेचारे हड़बड़ा कर उठ खड़े हुए और चाचा ने गद्दी दखल कर ली। दोनो दाँत पीसकर चाचा को कुछ सुनाना ही चाहते थे कि उनमे से एक ने साथी का साथ छोड़ कर, अवसरवादियों की तरह, चाचा का साथ दे दिया—अर्थात् चाचा के बगलवाली खाली जगह मे बैठ गया। चाचा मुस्करा उठे।

टालीगंज डिपो मे ट्राम से उतरकर चाचा ने एक इङ्गलिश बेप-

धारी 'मोशाय' से पूछा—"फिल्म कम्पनी का स्टुडियो किधर है ?"

वह बोला—"आप किस कोम्पानी मे जायेगा ?"

चाचा—"किसीमें भी।"

वह—"ओ, तब तो इधर भी जाने सकता, उधर भी जाने सकता है"—कह कर चलता बना। चाचा भी जिधर उसने बताया था, एक तरफ चल पड़े। कुछ दूर आगे, एक कम चौड़ी और ज्यादा लम्बी चहारदीवारी से घिरे भूतहे मकान के समान एक बड़े भारी घर के सामने जा खड़े हुए। मालूम हुआ जैसे किसी बिगड़ी जामींदारी का हथियार हो। वैसा ही लम्बा-चौड़ा-ऊँचा। मरम्मततलब उसके फाटक का सहारा लेकर—एक टूटी तिपाई पर एक मरियल नेपाली बैठा कभी ऊँघता कभी जम्हुआई लेता था। फाटक के ऊपर साइनबोर्ड लटक रही है—".. फिल्म कम्पनी", चाचा लापरवाही से जैसे ही फाटक के अन्दर घुसे कि पहरेदार बोला—"जगह नहीं है।"

चाचा—"वाह, इतनी जगह है, इतनी बड़ी आलीशान इमारत इस बुढ़ापे मे भी जवानी की याद मे अभी तक जिन्दा है, फिर भी...।"

इतने मे ही, सामने के नीचेवाले कमरे से आवाज आयी 'आने दो।', चाचा वहाँ पहुँचे। देखा, शायद औफिस है। कुर्सी, टेबल, रेक्स, आलमारी, तिजोरी, कागज-पत्र आदि सभी चीजें मौजूद हैं। टेलीफोन भी है। दो अर्ध-वयस्क सज्जन दो कुरसियो पर विराजमान है। मगर, चाचा को अनुभव हुआ कि 'कह रहा

है आसमाँ, यह सब समाँ कुछ भी नहीं।' चाचा एक खाली कुरसीपर ज्यो ही बैठने लगे कि गिरते-गिरते बचे। वे लोग भी 'हो' 'हो' करने लगे। चाचा ने देखा कि यह तीन टाँग की कुरसी दीवार के सहारे केवल ऑफिस का डिसिपलिन पालन कर रही है बेचारी। खड़े ही खड़े पूछा—"यही फिल्म कम्पनी है? धत्तेरी की, बहुत शोर सुनते थे...और, यह तो बनाइये, इस समय यहाँ क्या हो रहा है?' एक बोला—"अभी तो किछु नाहीं होता, पहले भी काम हुआ, बाद में भी किंतु होगा।' दूसरा बोला—"आप क्या नाउकी के वास्ते आया है?" चाचा बोले "जी, आया तो था मैं बहुत कुछ के वास्ते, लेकिन हौसला पस्त हो गया।" पहला—"आप पंडित हाय? कोविता लिखना आउर इस्टोरी भी लिखने सकता?"

चाचा—"जी, कुछ कुछ!"

दूसरा—"कुछ हारज का बात नई हाय, आप इस्टोरी दूसरा दिन लाइये और हम बोलता एक फाइनेन्सियर भी ठीक कीजिये। सिरीफ बीस हजार रुपेया लगायेगा, बाकी चालीस हजार हाम लोग लगा देगा। तीन महीना मे पिक्चर खलास। तीन-चार लाख मे बिक जायेगा, ताकदीर मारने से जादा भी होने सकता। बस, आधा नोफा आप लोगों का, आधा हम लोग लेगा। आप ऐसा कर सकता?" चाचा समझ गये कि दिवालिया कार-खाना है। मन में सोच गये, कर्मचारी इतना गिर गया है कि

एक मेरे जैसे साधारण व्यक्ति से भी बिजिनेसट्रिक खेलता है। प्रगट मे बोले 'मै इसीलिये तो आया ही था खैर, सामान वगैरह तो दिखाइये—कैसा है।"

दूसरा—"सामान साज्ञ है। कैमरा, साउण्ड, लेबोरेटरी, सीनसीनरी, फरनीचर, ड्रेस, आइये देखिये।" तीनों उठ खड़े हुए। चाचा को घुमा-फिरा कर सभी चीजें दिखलायी गयीं, और उनके बारे मे समझाने की चेष्टा भी की गयी। चाचा ने देखा, जैसे सभी चीजें किसी सिनो-म्युजियम मे रखने लायक है, बरसो-से बेकार-बेतरतीब पड़ी हुई जिन्दगी के शेष दिन बुरी तरह बिता रही है। दीवारो के पलस्तर गिर रहे हैं, कहीं-कहीं वर्षा-पानी के चूते रहने से उनमे जैसे कोढ के दाग उभड़ आये हैं। मैदान मे घास और जङ्गली झाड-झंखाड़ उग आये हैं। कूड़े-कर्कटों का उठानेवाला भी शायद नही है।

लौटकर सब ऑफिस मे आये। पहले ने चाचा से पूछा "आप सिगरेट किम्बा बड़ी-छड़ी खाता है?"

चाचा—"खाता नहीं पीता हूँ।"

दूसरा—"कौन मार्का का पीता?" चाचा ने मन मे समझा चच्चू के पास है नहीं, मुझी से जटना चाहते हैं। बोले—"सभी प्रसिद्ध-प्रसिद्ध मार्के की बीड़ियाँ इस्तेमाल करता हूँ, किन्तु साथ मे लेकर नही चलता।"

(१)

प्रोफेसर रणधीर बड़े ही सज्जन और साहित्यिक स्वभाव के सहृदय-व्यक्ति हैं। अत्यन्त रसिक होने पर भी पक्के सदाचारी हैं। अभी तक अविवाहित हैं। निर्हुत-कालेज में इतिहास के प्रोफेसर हैं। उससे जो समय बचता है, अधिकांश साहित्य और समाज की सेवा मे लगाते हैं। नवीन ढंग की कविता मे आपकी प्रतिभा विकासोन्मुखी है। कहानियाँ भी अच्छी लिखने लगे हैं। हाल ही मे आपका एक सुन्दर उपन्यास 'अनुराज' बड़ी ख्याति पा चुका है। अब एक दूसरे की तैयारी कर रहे हैं—इसी में आजकल अधिक समय लगाते हैं। उन्हे आशा है—यह रचना भी अद्वितीय होगी। आपमे यह एक विचित्रता है कि अप्रकाशित रचनाओ को किसी से भी नहीं दिखाते, और न उसके विषय मे कुछ कहते ही हैं। प्रकाशित होने पर एकाएक लोग जब उनकी आश्चर्यजनक प्रशंसा करते हैं, तो उन्हे एक अपूर्व आनन्द आता है।

रणधीर एक अच्छे व्याख्याता, अभिनेता भी हैं। नगर और प्रान्त मे आपकी अच्छी ख्याति है। चपरासी से लेकर प्रिन्सिपल तक आपको प्यार करते हैं—यही कारण है कि इस लोकप्रियता ने जहाँ इतने मित्र और सहानुभूति रखनेवाले बना छोड़े हैं, वहाँ मनुष्यता और सभ्यता की आड़ में छिपे-भयानक डंकवालों को भी, बुरी तरह आकर्षित कर लिया है।

कालेज के प्रिन्सिपल श्री शारदारञ्जन वन्दोपाध्याय डोमी-साइल्ड बंगाली हैं। आपके पूर्वज बहुत दिनों से बिहार मे रहते आए हैं। ब्रह्मो होते हुए भी सनातन धर्म के आचार-विचार और व्रत-उत्सवो पर आपकी बड़ी श्रद्धा है। पुरातत्व और धार्मिक-विवेचना पर आपके लेख अंगरेज़ी, बंगला और हिन्दी पत्रिकाओं मे प्रायः निकलते रहते हैं। आपकी पत्नी का देहान्त हो चुका है। लड़का वैरिष्ट्री करता है। पुत्री देववाला उसी कालेज के एफ़० ए० में पढ़ती है। बड़ी भली, भोली, और कुछ चंचल-सी, सुन्दरी बालिका है। प्रोफेसर रणधीर उसके हिन्दी-ट्यूटर हैं। फलस्वरूप हिन्दी की उसने साधारण-सी योग्यता प्राप्त कर ली है। कालेज की 'हिन्दी-सम्वर्द्धिनी समिति' की हस्तलिखित पत्रिका और उसकी बैठको में, उसकी गद्य-पद्य-रचनाएँ बड़े चाव से पढ़ी, और सुनी जाती हैं। इसका सारा श्रेय रणधीर को है। प्रिन्सिपल साहब को रणधीर पर पूरा विश्वास है, इसलिये दोनों के साथ-साथ घूमने-फिरने का उनका खास आदेश है। किन्तु सवेरे-शाम देववाला को पढ़ाने के लिये रणधीर को उसके घर पर ही आना पड़ता है। इन दोनो गुरु-शिष्या के बीच किसी तरह का कोई विशेष स्नेह या आकर्षण नहीं है, दानो एक-दूसरे के प्रति पारस्परिक कर्तव्य के ध्यान से ही मिलते-जुलते हैं। परन्तु, रणधीर के सामाजिक-क्षेत्र की यशाप्ति-

पहला—"अच्छा करता है। हम लोग भी इहाँ नेई पीता, स्टूडियो है न ? हुकुम नेई है।"

चाचा—"अच्छा तो जय माया की, इस समय मैं जाता हूँ। फिर आऊँगा।"

दूसरा—"आउर जैसा मैंने बोला, उपाय करके आइयेगा। हम आपको अलग भी कमीशन देगा।"

"जरूर आऊँगा।" कहकर चाचा लौटे। गेट पर आकर पहरेदार से बोले—"तुमने ठीक ही कहा था भाई: तुम्हारी जगह के सिवा यहाँ और कोई भी जगह नहीं है—और उस पर तुम विराज ही रहे हो, लाचार लौटा जाता हूँ।"

———

कहानी
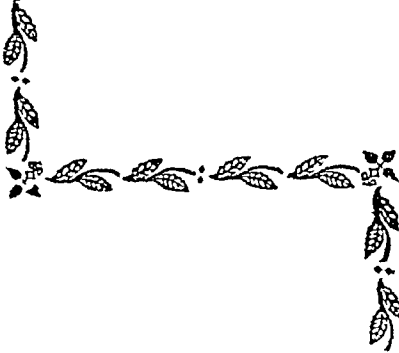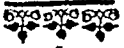
खो गया था

यह दिलचस्प कहानी लेखक द्वारा सम्पादित साप्ताहिक 'आलोक' [पटना] में बहुत पहले प्रकाशित हो चुकी है। अन्तिम अंश में कुछ आवश्यक परिवर्तन कर दिया गया है। भगवान् करें, पाठक-पाठिकाओं का भी इस तरह का कुछ खोया हुआ मिल जाय,..... ..

में अहर्निश झुलसनेवाले कुछ ईर्ष्यालु साथियो, और देववाला की कई सहपाठिनो तथा सहपाठियों के भाव इन दोनों के प्रति अच्छे नहीं हैं। कुछ प्रोफेसर भी, इस साधारण और नवयुवक प्रोफेसर के सौभाग्य पर मन-ही-मन ईर्ष्या करते।

(३)

प्रिन्सिपल-निवास के पश्चिम एक छोटा सा नज़रबाग है, उसी से ठीक सटा हुआ रणधीर का बंगला है। बंगले की पूरब ओरवाली खिड़की खोल देने से प्रिन्सिपल-निवास अच्छी तरह देखा जा सकता है; वरन ऊँचे स्वर में वार्तालाप भी हो सकता है। रणधीर का वहाँ आना-जाना उत्तर पथ से है, बाग से रास्ता नहीं है।

एक रात बड़े जोरो का अन्धड़ आया-तूफान का छोटा संस्करण। कितनी ही झोपड़ियाँ उजड़ गई। वृक्षो की शाखाओ और पत्तो से वसुन्धरा की छाती भर गई। छोटे-छोटे पेड-पौधे धराशायी हो गये। लोगो की वस्तुएँ तितर-बितर हो गई। रणधीर जब तड़के उठकर अपने पढ़ने-लिखने के कमरे में गया, तो दोनों ओर की खुली खिडकियाँ देखकर ही उसे चिन्ता हुई। कमरे का सारा कागज़ी सामान नीचे अस्तव्यस्त पड़ा था। समाचारपत्र, चिट्ठियाँ, लेटरपेपर आदि की बुरी गत हो रही थी। सब से बढ़ कर दुख यह देखकर हुआ कि उसके मनोयोग का आधुनिक केन्द्र, अनेक हिस्सो में इधर-उधर फैला

हुआ है। वह था उसका बड़ी साधना से लिखा जानेवाला उपन्यास। जल्दी जल्दी सारे सामानों को ठीक कर वह उपन्यास के पन्ने मिलाने लगा। सब तो मिल गए, पर एक न मिला। बड़ी बेचैनी हुई। इसमें रणधीर ने मानव हृदय की सच्ची और जीती-जागती तस्वीर उतारी थी। उसकी सारी विद्वत्ता, विदग्धता सरसता और अभाव-आकांक्षा का निचोड़, कागज़ के उस क्षुद्र पृष्ठ पर लेखनी के रास्ते चू पड़ा था। व्याकुल होकर उसने दुबारा-तिबारा खोजा। आलमारी, टेबल, समाचारपत्रों के पृष्ठ तमाम छान डाले गये, पर वह हृदय-धन न मिला। बाग में भी बहुत दूर तक इधर-उधर देखा, कहीं कोई कागज़ का टुकड़ा दिखलाई नहीं पड़ा। निराश हो, सिर पर हाथो को रख, कुर्सी पर थप् से बैठ गया। सोचा- 'ऊँह, दूसरा लिख लूँगा, इतनी बेकली की क्या ज़रूरत?' फिर ध्यान आता 'नहीं नहीं, वैसा नहीं लिखा जा सकता, होगा तो उससे अच्छा या बुरा। ओह, बड़ा मोह आता है!' सिर उठा कर घड़ी की ओर देखा। 'अरे, साढ़े नौ? अभी तक शौच-स्नानादि से भी छुट्टी नहीं पाई। देवबाला के ट्यूशन का समय भी निकल गया। कालेज जाने का समय हो रहा है...।'

एकाएक शरारत भरी मुस्कुराहट और जिज्ञासा भरी दृष्टि से देवबाला ने कमरे मे प्रवेश किया। रणधीर ने उसका ऐसा भाव कभी न देखा था। कुछ समझा नहीं। सोचा, देरी की वजह चली

आई हैं। ..मगर आज तक तो कभी ऐसा न हुआ ? इस क्षणिक मूक—दृश्य ने जैसे देववाला के हृदय स्थित किसी शंका को गिजा पेहुँचा दी हो: उसने तनिक सर हिला कर इसका प्रदर्शन किया। रणधीर को क्या मालूम ? उसने कहा—"देवा ! आज कुछ जरूरी कार्यवश न आ सका; शाम को दोनों समय का पूरा हो जाएगा। नहीं तो...देखता हूँ, तुम पुस्तक आदि भी न लाई यहीं कुछ पढ़ा देता। अच्छा जब तक कोई मासिक-पत्र देखो, मैं शीघ्र ही स्नान आदि से छुट्टी पा लूँ।" फिर वही मूक-मुस्कुराहट !!...जिज्ञासा भरी चितवन !!! रणधीर ने जैसे कुछ समझा नहीं, कहा, 'आओ बैठो न, खड़ी क्यों हो ?

"नहीं, यों ही आई थी आपको देखने। अब जाती हूँ, शाम को आइएगा न ?"

'जरूर।'

(४)

शाम को रणधीर जब पढ़ाने गया, तो सदा से कुछ विपरीतता का आभास पाया। बात में, व्यवहार में, अदब में, और पढ़ाई में कुछ-कुछ अनोखापन-सा अनुभव हुआ। समय पूरा हो जाने पर भी, देववाला कुछ और पढ़ने की इच्छा जताने, और अनावश्यक बातें बनाने लगी। रणधीर ने आज की नवीनताओं पर कुछ ध्यान न दिया। समझा, बालिका ही तो है; अकारण चप-

लता करना उसका स्वभाव है। थोड़ी देर और पढ़ा कर चलने को तैयार हुआ। देवबाला ने कहा 'आप......आप शिक्षा-मार्ग का पथ दर्शाकर ही ठहर जाना चाहते हैं, आगे नहीं बढ़ते। मै बढ़ना चाहती हूँ...।'

रणधीर ने सहज स्वभाव से कहा "बढ़ो न, जितना चाहो बढ़ो। मै शक्ति भर तुम्हे बढ़ाने को तैयार हूँ।"

देवबाला ने, उनकी ओर न जाने किस भाव से थोड़ी देर तक देख कर कहा 'तो फिर...? अच्छा जाइए, सवेरे आइयेगा न?'

"क्यो? आऊँगा क्यो नही?" कहता हुआ रणधीर डेरे चला।

इसी प्रकार रणधीर को नित्य कुछ-न-कुछ नवीनताओं का अनुभव होने लगा। एक दिन ऐसा विदित हुआ कि वह कुछ कहना चाहती है, किन्तु छिपा रही है; और ऐसा सांकेतिक भाव दर्शा रही है, जिससे रणधीर ही को कुछ कहना पड़े। वह अभी तक तो अनजान था, परन्तु अब जैसे समझदारी का तकाजा आरम्भ हुआ। सोचा, 'कहीं यह मुझसे प्रेम तो नहीं करने लगी है......!' सारे लक्षणो को मिलाकर देखा, ठीक यही बात है। "तो......तो, इसका आरम्भ कैसे हुआ?......मैंने तो स्वप्न मे भी ऐसी कल्पना नहीं की, हाव-भाव दर्शाना तो दूर की बात है। तो क्या स्वयं ही उसके मन मे यह बात उठी? मुझसे

ऐसा कोई आकर्षण भी तो नहीं है !" परिणाम यह हुआ कि अब वह भी संकोच करने लगा। उसकी निर्दोष आँखें जो निर्विकार भाव से अपना कर्तव्य पालन कर रही थीं, अब सामना करने में जी चुराने लगीं। उससे उधर का साहस बढ़ चला। अब अधिकांश समय रणधीर के साथ ही बिताना चाहती है, और रणधीर उससे भागना चाहता है। पिता से आज्ञा लेकर अब वह रणधीर के बँगले पर ही पढ़ने के लिये आने-जाने लगी है। इस अत्यन्त बढ़ती हुई घनिष्ठता को देखकर रुकावट और ईर्ष्या का बाजार गर्म हो उठा। लोगों की मनोवृत्ति प्रतिकार के लिये उत्तेजित हो गई। सब ताक में रहने लगे।

(५)

एक दिन शाम की पढ़ाई समाप्त कर देवबाला अकारण ही इधर-उधर की बातें करके जैसे भागते हुए रणधीर के मन को बरबस रोक रही है। आज जैसे उसने कुछ ठान-सी ली है। एकाएक पूछा—'मास्टर साहब, प्रेम किसे कहते हैं ?'

रण०—(कुछ सोच कर) 'प्रेम तो किसी के प्रति लालसा-रहित आकर्षण को कहते हैं।'

देव०—'लालसारहित आकर्षण ?'

रण०—'हाँ'

देव०—'यह सम्भव है ?'

खो गया था]

रण—'सम्भव नहीं है तो पुस्तको मे वर्णन क्यों है? लोग करते क्यो हैं?'

देव०—[कुछ ठहर कर] 'आप यह सैद्धान्तिक रूप से कहते हैं या व्यावहारिक?'

रण०—'.....दोनो'

देव०—[मुस्कुराने की चेष्टा करती हुई] 'दोनो किस प्रकार? आपने इसकी व्यावहारिकता का स्वयं अनुभव किया है?'

रण०—'मैंने नहीं किया है, करनेवाले अनुभवियो के विचार तो पढ़े हैं।—सुने हैं।'

देव०—'स्वयं नहीं किया है'

रण०—'नहीं'

देव०—'कभी चेष्टा की है?'

रण०—'नहीं, कभी नहीं......मगर देवा, आज तू ऐसे प्रश्न क्यो कर रही है? आज तो.....,'

रणधीर की ओर एकटक देखती हुई—एकाएक देववाला ने उत्तेजित स्वर मे कहा—

'क्यो प्रश्न कर रही हूँ?.....निठुर!.....' और फिर दोनो हाथो से सर थाम, फफक फफक कर रो उठी। बेचारे रणधीर को कुछ न सूझा कि क्या करें। इस अप्रत्याशित घटना से वह हक्का-बक्का सा हो, कुछ देर तक तो बैठा रहा; फिर आश्वासन देने के लिये डरते-डरते उसके सर पर हाथो को

फेरना आरम्भ किया। परन्तु देवा का रोना घटने के बदले बढ़ता ही गया। इतने में एक और घटना हो गई, जिसकी और भी आशा नहीं थी। एकाएक प्रिन्सिपल साहब कई प्रोफेसरों, विद्यार्थी-विद्यार्थिनो, और कुछ बाहरी मनुष्यों के साथ आ धमके; और अपशब्द कहते हुए एक ऐसी लात देवबाला को लगाई कि वह बेचारी औंधे मुँह जमीन पर गिर पड़ी—और बेहोश हो गई। रणधीरको ऐसे-ऐसे अपशब्द कहे गये, ऐसी लानत-मलामत की गई कि वह पागल की तरह चेष्टाएँ करता हुआ रो पड़ा। फिर एकाएक बाहर की ओर भागा। लोगो ने पकड़ लिया। इसके बाद प्रिन्सिपल साहब बेहोश देवबाला को विद्यार्थिनिओं की सहायता से उठा कर निवास की ओर चले। साथ में पागल कैदी-रणधीर और अन्य लोग भी।

× × ×

थोड़ी देर की चेष्टाओं के बाद देवबाला की आँखे खुलीं। उसने चारो ओर देखा। रणधीर एक ओर उद्दंड अपराधी की भाँति निश्चेष्ट बैठा था। प्रिन्सिपल साहब ने अत्यन्त कोमल स्वर मे पूछा "देवा, तू इस नराधम के फन्दे मे कैसे आई ?"

वह थोड़ी देर तक पिता, फिर रणधीर की ओर देख कर बोली "पिताजी, पहले इसीने मेरे पास प्रेम-पत्र भेजा, मैं अनजान इस पर रीझ बैठी......फिर-फिर इसने अनभिज्ञता जता कर मुझे अत्यन्त त्रास दिया, ओह !"

खो गया था]

रणधीर—"ईश्वर तू साक्षी है। क्या मैं उस पत्र को देख सकता हूँ ?"

देववाला—"पिता, इस निठुर का साहस तो देखो! अस्वीकार करने का क्या ढंग निकाला है। अच्छा मैं दिखाती हूँ।"
इतना कह कर पढ़ने-लिखने की टेबुल के दराज में से एक मोड़ा हुआ लिखित पत्र निकालकर उसने रणधीर के मुँह पर फेंक दिया। पत्र देखते ही रणधीर की चेष्टाएँ बदल गईं। वह एकाएक उठ खड़ा हुआ और आनन्दातिरेक से विह्वल होकर बोल उठा 'देवा, यह तुझे मिला क्योंकर ?'

देव०—"जिस दिन, आप पढ़ाने नहीं आए उसी दिन सबेर टेबुल पर पड़ा देखा, उठाकर पढ़ा। मैं आपके अक्षर पहचानती थी। समझ गई, आप ही ने लिखा है—और मेरे ही पास लिखा है। जब आप उस दिन नहीं आए, तो पूरा विश्वास हो गया कि आपको संकोच हो रहा होगा। तो क्या यह पत्र...?"

रणधीर—"पगली, यह प्रेम-पत्र तो अवश्य है, जिसे मेरे अप्रकाशित उपन्यास के प्रेमी ने अपनी प्रेमिका को लिखा है। देखती नहीं, कोने में नत्थी का चिन्ह! ओह, यह सारा अन्धेर उस दिन के अन्धड़ का है, उसी ने मेरे कमरे से उड़ा कर यहाँ पहुँचाया।"

अब तो असलियत समझते किसी को देर न लगी। प्रिन्सि-

९

पल साहब और अन्य लोगों को बड़ा पछतावा होने लगा। माली ने भी स्वीकार किया, कि जरूरी कागज समझ कर उसने ही टेबुल पर रख दिया था।

(६)

कई दिन बीत गये। बात आई-गई हो गई। लोग इस घटना को एक प्रकार भूल-से गये। किन्तु रणधीर भूलने की बजाय एक विचित्र मानसिक उलझन में फँस चला। कालेज में या और कहीं भी, देवबाला की ओर देखने में न जाने क्यों संकोच अनुभव करने लगा। उधर, देवा के स्वभाव में भी परिवर्तन। हर दम जैसे लज्जा में गडी सी रहती—चिंताशील। पहली सी चपलता, नटखटी, बच्चों की सी हँसी, न जाने कहाँ खो गई। घर पर कुछ उदास, कुछ सहमी-सी तो रहती ही है, कालेज में भी यही हाल है। वहाँ की साहित्य-कला-गोष्ठियों में बुलबुल ने चहकना छोड़ दिया है। जहाँ तक होता है, रणधीर से दूर ही रहने की चेष्टा करती—है आँखें चुराती है।

एक दिन प्रिंसिपल साहब का ध्यान एकाएक इस ओर आकर्षित हुआ। बुलाकर पूछा—

'क्यों देवू, तबीयत तो ठीक है न? अजीब सूरत बनाए रहती है—आजकल। बात क्या है?'

देव०—'नहीं पिताजी, कुछ ऐसी बात तो नहीं है। परीक्षा सर पर है न—'

खो गया था]

प्रि०—'ओ, समझा। इसीसे, जैसे तू घर मे रहती ही नहीं, ऐसा लगता है। वह हुल्लड़बाजी, धमाचौकड़ी सब बन्द है। (हँसकर) कभी-कभी कुछ शरारत कर लिया कर, इसके बिना घर सूना-सूना लगता है। अच्छा, रणधीर यही पढ़ाने आता है या तू ही उसके घर जाती है ?'

देव०—'जी·····'

प्रि०—'क्यो ? चुप क्यों हो गई ?'

देव०—'मै उनसे नहीं पढ़ती।'

प्रि०—'अरे ! यह क्यो ?'

देवा ने फिर चुप्पी साध ली।

प्रिंसिपल ने समझा, 'अपराध की लज्जा बच्ची को अभी तक खाए जा रही है,' प्रकट मे मुस्कुराकर बोले—'अरे तूने जान बूझ कर थोड़े ही कुछ किया है ? भूल-भ्रम सभी से होते हैं। अच्छा, क्या वह भी नहीं आता ?' देवबाला बोली नहीं, केवल सिर हिलाकर 'नहीं' का संकेत किया।

प्रिंसिपल बोले—'उसके न आने की कौन सी बात थी ? गँवार कहीं का ! खैर, यहीं बुलाता हूँ उसे, माफी माँग लेना। आखिर तुम्हारा गुरु है न ! अरे ओ जीतू—जीतू·····।'

जीतू बाग का माली है, घर के छोटे-मोटे फुटकर काम भी कर देता है। सुनते ही 'जी सरकार' कहता दौड़ा आया

प्रिंसिपल साहब ने आज्ञा दी—'जा झटपट रणधीर जी को बुला ला।'

जीतू जैसे ही जाने लगा कि देवा ने झट से रोक दिया।

'नहीं जीतू, मत जाना। मैं ही संध्या को उनके यहाँ मिल आऊँगी। अभी जरूरत ही क्या है?'

प्रिंसिपल साहब ने सोचा, जब कई दिनों से आपस में संकोच की दीवार नहीं ढही तो फिर इनमें से कोई भी स्वयं साहस नहीं करेगा। जीतू से बोले—

'नहीं रे, जा तू प्रोफेसर जी को बुला ला। कहना मैं बुला रहा हूँ।' जीतू के जाते ही लगे बेटी को समझाने। "सच्चे मन से अपराध के लिये पछतावा करने से जी का बोझ हलका हो जाता है। कितना नेक है बेचारा। इतना अपमान हुआ, किन्तु शान्त बना रहा। जा, कपड़े बदल कर पअने कमरे में आ, वह आता ही होगा।" देवा चुपचाप चली गई। प्रिंसिपल जैसे ही अपने रूम से बाहर निकले कि जीतू लपका हुआ आकर बोला 'हजूर, जैसे ही मैं पहुँचा, वह ताँगे पर सवार होकर स्टेशन की तरफ़ जा रहे थे। बिस्तर-बिस्तर भी साथ में है। कह रहे थे, घर जा रहा हूँ। यह चिट्ठी दी है।' प्रिंसिपल ने पढ़ कर देखा—क्षमा प्रार्थना के साथ इस्तीफ़ा है, कालेज की प्रोफेसरी से। कुछ सोच कर जीतू से कहा 'दयाल सिंह को कह दे कार ले आवे – फ़ौरन।'

कार आई, सवारी चढ़ाकर स्टेशन की ओर हवा हो गई। स्टेशन-कम्पाउन्ड में जैसे ही घुसी, सामने रणधीर ताँगे से उतर

रहा था। पास ही कार रुकवा कर प्रिंसिपल साहब उतरे। उन्हें देखते ही रणधीर सकपका गया। प्रणाम के लिये हाथ उठाकर भी, गुम-सुम खड़ा रहा—दूसरी तरफ़ देखता हुआ।

'कहाँ जा रहे हो?'

'घर'

'क्यो?'

चुप।

'चलो लौट चलो। गुरु-चेलिन आपस मे समझौता कर लो। देवा माफी चाहती है। देखो, भूल-भ्रम मनुष्य से होते ही हैं। माना कि तुम्हारा अपमान हुआ। मुझे भारी दुख है, क्योंकि तुम्हे भी मै पुत्र जैसा ही समझता आया हूँ।' रणधीर घबरा कर बोला—

'नहीं नहीं सर, मुझे जाने दीजिये।'

प्रि०—'माना कि आत्म-अपमान का अभिमान स्वाभाविक है, पर उसका समाधान हो जाने पर ज़िद पकड़ लेना ठीक नहीं। और ..'

रणधीर बीच ही मे बात काट कर बोला—

'नही नहीं, सर। यह बात नहीं है।'

प्रि०—'तब लौट चलो। देवा को बड़ा पछतावा है। इसी सोच मे वह हरदम उदास रहती है। तुमसे माफी माँग लेगी तो उसका जी हलका हो जाएगा। देखते नही हो, आजकल

कैसी होती जा रही है ? चलो, बचपना रहने दो।'

अनिच्छापूर्वक यंत्रचालित पुतले की भाँति रणधीर अपने प्रिंसिपल साहब के साथ लौटा।

कार से उतरकर दोनों बैठके में आए। रणधीर को बैठने के लिये कह कर प्रिंसिपल देवा के कमरे की तरफ़ चले।

उसके द्वार के कुछ इधर ही जैसे पहुँचे, देवा को आवेश के साथ किसी से बातें करते सुना। जरा रुक गये। वह देवा की अभिन्न सखी राधा थी। शायद वार्तालाप का सिलसिला देर से चल रहा था। जितना अंश सुना, इनके लिये काफी था। देवा सखी से कह रही थी—'जैसे ही वह उपन्यास वाली चिट्ठी तूफ़ान में उड़कर मिली, बिना अधिक सोच-विचार किए मैं मन-ही-मन उन्हें आत्म-समर्पण कर बैठी। रहस्योद्घाटन के समय तक, हरदम मैं इसी भाव में विभोर रही। और अब तो·····।'

(७)

प्रिंसिपल साहब की समझ में अब सब कुछ आ गया। पहले दोनो का बर्ताव कुछ और ही समझ रहे थे। अब उनकी आँखें खुल गईं। फिर तो जो कुछ किया जा सकता था, उन्होंने उदारतापूर्वक किया। कई दिनों तक खूब चहल-पहल रही। सारा काम सादगी और सुन्दरता से सम्पन्न हुआ।

———

स्वर्ग में सायरन

[इस नाट्य-रूपक [जिसे इन दिनों 'एकाकी नाटक' कहा जाता है] का तर्ज़—बया एकदम नया नहीं है। फिर भी सुप्रसिद्ध (पूज्य श्री बाबूराव विष्णु पराड़कर के द्वारा सम्पादित) संसार के होली-विशेषांक [६-३-४४] में प्रकाशित होने के बाद, इस ढंग की कई चीजें छपी हैं। पाठक तुलना करेंगे।

युद्धकाल में, शत्रु के बमबाजों से जनता को सावधान करने के लिये सायरन बजती है। स्वर्ग में इसका बजना आश्चर्यजनक ही नहीं, अस्वाभाविक भी है। किन्तु इसका तत्त्वविवेचन उतना ही सत्य-स्वाभाविक और मनोरंजक है। पाठक पढ़ना आरम्भ करते ही समझ लें—सायरन सुन रहे हैं। इसके बाद—]

प्रथम दृश्य

[स्थान—स्वर्गसभा, विष्णु, इन्द्र, बृहस्पति, कुबेर, वरुण, चित्रगुप्त यथास्थान बैठे हैं। उर्वशी नृत्य कर रही है। वाद्य-कला रंग पर है। एकाएक सायरन—खतरे का भोंपा बज उठता है। नृत्यवाद्य रुक जाते हैं। सब चकित—आशंका से एक-दूसरे को देखने लगते हैं। इसी समय यमराज शीघ्रतापूर्वक एक स्वयंसेवक के साथ प्रवेश करते हैं। सायरन की ध्वनि पर ध्यान जाते ही, स्वयं-सेवक साश्चर्य बोल उठता है]

स्वयं०—अरे! यहाँ भी सायरन? भागिये, भागिये आप लोग; और ऐसी जगह छिपिये जहाँ बम असर न कर सके।

इन्द्र—बम?

स्वयं०—हाँ महाराज, वह आपके वज्र का भी गुरु है। जल्दी भागिये, क्लियर हो जाने के बाद फिर बहस-विचार कीजियेगा।

कुबेर—क्लि-य-र हो जाने के बाद? यह क्लियर......

स्वयं०—बस रह गये न सीधे देवता! अरे महाराज, क्लियर का अर्थ है—भय दूर हो जाने की घण्टी। जिस प्रकार यह भय का भोंपा बज रहा है, उसी प्रकार भय दूर हो जाने का भी बजता है।

[सायरन की ध्वनि बन्द हो जाती है]

वरुण—यह तो बन्द हो गया।

स्वयं०—इससे क्या, जब तक क्लियर की घण्टी नहीं बजती तब तक भय बना रहता है।

विष्णु—धर्मराज जी, यह कौन है ?

यम—यह हैं......

चित्रगुप्त—प्रसिद्धपुर के स्वेच्छासेवक। इनकी आकस्मिक मृत्यु एक महाभयानक विस्फोटक आग्नेय-अस्त्र द्वारा होने-वाली थी।

यम—हाँ महाराज, सचमुच वह महाभयंकर-प्रलयंकर अस्त्र है। मै तनिक सा बच गया। नहीं तो, जो सबके प्राण हरण करता है, उसके प्राण स्वयं हरण हो जाते महाराज।

स्वयं०—उसी अस्त्र का नाम बम है। अरे आप लोग छिपते क्यो नहीं ?

विष्णु—बम तो हमारे शंकर जी के नाम के पहले लगाकर बमशंकर के नाम से भक्तजन उनकी आराधना करते हैं।

स्वयं०—अजी भगवान् महाशय, शंकर जी मे जो शक्ति थी, स्वतन्त्र राष्ट्रो के वैज्ञानिको ने उसमे से 'बम' निकाल लिया, और केवल शंकर भक्तो के लिये छोड़ दिया है। खैर, अभी बहस छोड़िये और कहीं जल्द छिप जाइए। संसार बनता-बिगड़ता ही रहता है, मगर आप ही लोग अगर बमदेवता के शिकार हो गये, तो बस कहानी समाप्त। प्रसिद्धपुर मे सायरन बजने पर आप ही जैसे हुज्जतियों को समझा रहा था कि एकाएक शत्रु के

यमराज आये, और .....। अरे महाराज जल्दी कीजिये। हम सांसारिकों पर आप लोग खूब हुक्म चलाते आ रहे हैं, इस समय कम-से-कम अपनी भलाई के विचार से ही सही, मेरा हुक्म मान जाइये।

इन्द्र—बृहस्पति जी, आप देवलोक की बुद्धि हैं। कहिये क्या उचित है?

बृ०—अभी तो इस सेवा-सिपाही की बात मान ही लेनी चाहिये; तब तक मैं विचार भी कर लूँगा कि क्या रहस्य है।

इन्द्र—अच्छा, तो अभी हमलोग कल्पवृक्ष के नीचे आश्रय ले। और जैसा कि (मुस्कुराकर) मनुष्य महाशय ने कहा है भय दूर होने की ध्वनि होते ही पुनः यहाँ एकत्र हों। मेरी राय है (विष्णु से) भगवन, कि उस समय कुछ मर्त्यलोकवासी भी जो स्वर्गलोक में निवास कर रहे हैं, परामर्श में सम्मिलित किये जायँ।

विष्णु—ऐसे कई महामानव नर्क में भी हैं; इस असाधारण अधिवेशन में उन्हें भी बुला लिया जाय।

स्वयं०—अरे दुहाई है आप लोगो की, जल्दी कीजिये। सम्मेलन होता रहेगा।

[सब उठकर जाते हैं]

द्वितीय दृश्य

[स्थान—कल्पवृक्ष की छाँह। उपरोक्त सभी महाशय उपस्थित है। क्लियर की सायरन बजती है]

स्वयंसेवक—बस, खतरा टल गया। अब आप लोग निश्चिन्त होकर बहस-विवाद कर सकते है। चलिये सभा-भवन मे।

इन्द्र—यमराजजी, जिनके नाम निश्चित हुए हैं, उन्हे सूचना दे दीजिये, दो घंटे बाद सभा-भवन मे आ जायँ। तब तक हम लोग विश्राम कर ले।

यम—चित्रगुप्तजी, (स्वयंसेवक की ओर संकेत करके) इन्हे कौन सा स्थान दिया जाय ?

चित्र०—कर्मानुसार तो नर्क मिलना चाहिये।

विष्णु—परन्तु, इनकी मृत्यु परोपकार मे हुई है, अतएव इन्हे स्वर्ग मिले।

इन्द्र—यमराजजी, इनके लिए स्वर्ग मे ही व्यवस्था कीजिये।

स्वयं०—मगर महाराज, नर्क मे मेरे बहुत से साथी मेरी प्रतीक्षा कर रहे होगे।

विष्णु—(मुस्कुराकर) इन्हे कह दिया जायगा कि अगले जन्म मे आप ही की भाँति मृत्यु प्राप्त कर स्वर्ग मे आपसे साक्षात् करे।

[सब हँसते हुए जाते है]

तृतीय दृश्य

[स्थान—वही, तथाकथित सम्मेलन मे उपरोक्त देवताओं के अतिरिक्त कुछ अन्य व्यक्ति उपस्थित हैं।]

इन्द्र—बृहस्पतिजी, अपने विचार प्रगट कीजिये।

बृह०—महानुभावो, सायरन-भय का भोंपा—इन दिनों मर्त्य-लोक में कहीं न कहीं नित्य बज रहा है। क्योंकि सारा विश्व इस नाशकारी युद्ध में त्रस्त है। एक पक्ष दूसरे पक्ष पर विमानों द्वारा महाघातक आग्नेय—जिसे बम कहते हैं, बरसाता है। सायरन उन्हीं आक्रमणकारी विमानों के आने की चेतावनी है।

वरुण—किन्तु हमारे देव-लोक को तो ऐसे आक्रमणों का भय नहीं। न हमारा कोई शत्रु है, और न हमारी भौगोलिक स्थिति ही ऐसी है। तो भी आज की यह भयंकर शंख ध्वनि—

बृह०—प्रतिध्वनि है विश्व के सायरन की। परन्तु वास्तव में यह देवलोक के लिए सायरन ही है!

कुबेर—अर्थात् हमलोगों के लिए भी भय का कारण है?

बृह०—हाँ, निश्चय!

वरुण—किस प्रकार?

बृह०—यदि मर्त्य-लोक न रहा, विश्वविध्वंस हो गया, तो लोक-परलोक की क्या उपयोगिता? यह लोक तो एक प्रकार मर्त्यलोक-वासियों का उपनिवेश है। हम कुछ कर्मचारियों को छोड़कर, शेष सभी स्वर्ग-निवासी विश्व-प्रवासी ही तो हैं।

यम—किन्तु पहले भी तो कई बार प्रलय हो चुके हैं, जिनसे विश्व का नाश होता रहा है।

बृह०—वे ईश्वरेच्छा-प्रेरित प्राकृतिक प्रलय थे। उनमें स्वर्ग, मर्त्य और पाताल की समाप्ति हो गयी थी। किन्तु आजकल तो

अप्राकृतिक प्रलय हो रहा है। यह मनुष्यों की—जातियों की महत्त्वाकांक्षाओं का संघर्ष है।

स्वयं०—तब तो इसमें जो जूझते या सहायता करते होंगे, उन्हे नर्क-त्रास होगा ?

इन्द्र—नहीं, जो स्वदेश की भलाई समझ कर अपने शासन-सञ्चालक की आज्ञा से सहयोग देते होंगे, उन्हें तो स्वर्ग प्राप्त होगा।

स्वयं०—अच्छा, अभी-अभी जो भारत, विशेषकर बङ्गाल मे भूख से मरे हैं या मर रहे हैं उनको ?

इन्द्र—माँ की गोद की तरह उन्हें स्वर्ग मे सबसे उत्तम स्थान प्राप्त होगा।

स्वयं०—और जो कर्मचारी या व्यापारी इस मृत्यु-महोत्सव के दायी हैं ?

इन्द्र—अकारण मृत्यु का दायित्व जिन पर है, उनके लिये नर्क का विधान सर्वविदित है।

स्वयं०—मगर उनमे से अनेक भूखों के लिए दान अथवा इन्तज़ाम कर रहे हैं ?

इन्द्र—वे अपने महापाप का लघु-प्रायश्चित्त कर रहे हैं। हाँ, जो निःस्वार्थ-सहायता कार्य मे संलग्न हैं, यदि वे महापापी भी होंगे तो उन्हे स्वर्ग पाने का अधिकार है।

विष्णु—(स्वयंसेवक से) और कुछ आपको पूछना है।

स्वयं०—जी...नहीं।

विष्णु—बृहस्पतिजी, अब आप अपना वक्तव्य पूर्ण कीजिये।

बृ०—मैं पूर्ण कर चुका। केवल निवेदन करना है कि आज जिस प्रकार सारा विश्व विविध वेदनाओं से व्यथित होकर तिल-तिल नाश को प्राप्त हो रहा है, उसकी प्रतिक्रिया देवलोक में भी हो सकती है इसी की चेतावनी स्वरूप यहाँ भी सायरन बजा है। अतएव पूर्ण विचारों के साथ इसके निवारण की चेष्टा करनी चाहिये।

विष्णु—आप सज्जनों को गुरु बृहस्पति ने सारी बातों को भलीभाँति समझा दिया है। इस विषय पर अब अपने-अपने विचार प्रगट कीजिये। सर्वप्रथम महाराजाधिराज विक्रमादित्य वक्तव्य दें।

विक्रमादित्य—मैं संक्षेप में ही निवेदन करूँगा। भिन्न-भिन्न संस्कृतियों, भाषाओं, जातियों तथा ऋतुओं के रहते हुए भी भौगोलिक सीमा-शृंखला के कारण विश्व-विख्यात भारतवर्ष में एकदेशीयता—राष्ट्रीय संस्कृति अवश्य है। इसी आदर्श की रक्षा वैदिक-काल से होती चली आ रही है। मेरे पूर्व के ऐतिहासिक महापुरुषों ने भी इसी ध्येय की रक्षा में ख्याति प्राप्त की। परन्तु जब-जब विदेशियों द्वारा राष्ट्रीय एकता छिन्न-भिन्न हुई, भारत की सारी सुव्यवस्था बिखर गयी। प्रान्तीयता, जातीयता, साम्प्रदायिकता आदि—कलह से गृह-युद्ध मचते रहे। प्रायः इसके दो

कारण प्रधान होते हैं। एक तो सीमाप्रान्तों के हड़प और लूट-मार मचाने की विदेशियो की कुचेष्टा और दूसरा आयात-निर्यात होनेवाले पदार्थों के कर-सम्बन्धी अनुचित लाभ उठाने की चेष्टा। हमारे जल, स्थल तथा पहाड़ी मार्गों पर सदैव उनके द्वारा आतंक उपस्थित होते रहते थे। इसी के नि-ारण के लिये उन विदेशी शासको से ही नहीं, उनके द्वारा बहकाये गये अपने प्रान्तीय शासको से भी हमे युद्ध करना पड़ा, और लुटेरे दूर खदेड़े जा सके। जिन्होने सन्धि चाही, उन्हे मित्र बनाया। जो वसना चाहते थे, उन्हे सादर स्थान दिया गया। ऐसा लगता है कि मेरे शासन के समय मे जो युद्ध के कारण थे, आज के विश्व-युद्ध का कारण भी प्राय: वैसा ही कुछ है। और जव तक राष्ट्रों मे यह लुटेरी प्रवृत्तियाँ रहेगी, तव तक ससार मे शान्ति न होगी।

विष्णु—शाहशाह अकवर कुछ कहे।

अकवर—मै अपने बुजुर्ग और हिन्दुस्तानी कौमियत के सवसे वड़े तवारिखी रहनुमा महाराजा विक्रमादित्यजी की बातो की ताईद करता हूँ। हिन्दुस्तान की हुकूमत मे मेरा भी उसूल यही रहा। गो कि मेरे हम मज़हव सलाहकारो ने मेरे दिल मे वार-वार यही ख्याल पैदा करने की कोशिश की कि हम मुसलमान गैर-मजहव और गैर मुल्क के हैं। हमे उन्हीं की वेहतरी की खातिर हिन्दुस्तान पर हुकूमत करनी है। मगर मैंने मादरे-हिन्द को ही अपना वतन समझकर उसकी कौमियत को मजवूत करने के लिये

सभी कुछ किया। लड़ाइयाँ लड़ीं, सुलह की, दीन-ए-एलाही मजहब चलाया, हिन्दू-मुस्लिम शादी को तरजीह दी। मगर अफसोस, मेरे बाद यह कड़ी ढीली होती-होती एकदम टूट गयी, और देश गुलाम हो गया। यह एक अजीब राज है कि यह दुनियाई-बहिश्त जिस किसी गैर मुल्कवालों के कब्जे में रहा, दूसरे गैर-मुल्कवालों ने भी उसे चैन न लेने दिया। (हरे-हरे की आवाज) हिन्दू—बादशाह के पहले की तवारीख मेरे सामने नहीं है कि शक, हूण, और दूसरे विदेशियों ने—हिन्दुस्तान पर कब्जा जमाने के लिये कितनी खून की नदियाँ बहायीं। अपने हम-मजहबों के बारे में इतना जानता हूँ कि पठान जब यहाँ बादशाह हुए, तो उनके मुख़्तलिफ़ फ़िरकों में भी मार-काट मचती रही। मुगलों के जीतने पर उनमें भी खूँरेजियाँ मचीं। भाई भाई का, बेटा बाप का दुश्मन बन गया। इसके बाद पोर्तुगीज, फ्रांसीसी, डच किस्मत आजमाते रहे। आज अँग्रेजों का सितारा बुलन्दी पर है, कल की बात खुदा जाने। कौन कह सकता है कि इन दिनों जो दुनिया में कयामत बरपा किया जा रहा है हिन्दुस्तान की गुलामी भी उसकी एक वजह नहीं है?

विष्णु—अब गोस्वामी तुलसीदासजी कुछ निवेदन करें।

तुलसी—(शान्त भाव से उठकर)

जे अधर्म बस युद्ध कराहीं।
नरकहुँ महँ तिनि ठौर न पाहीं॥

जे परजा पीड़क अभिमानी।
करत अनेक स्वार्थ मनमानी॥
रावण सरिस वीर विज्ञानी।
ताकी सुनियत करुण कहानी॥
तिन सासक गति कबहुँ न पाई।
जनम जनम के पुन्य नसाई॥

विष्णु—कार्लमार्क्स साहब!

यम—महाराज, उन्होंने और लेनिनजी ने कहा कि पूँजीपतियो के खुदा और देवताओ के दरबार मे हम न आयेंगे। साथ ही यह भी कि आजकल की दुनियावी लड़ाई पूँजीपतियों की ही चलायी हुई है और धर्म भगवान-स्वर्ग का ढकोसला उसमे मदद करता है। इसलिये अच्छा है कि यहाँ भी 'वम्बार्ड' हो, जिससे स्वर्ग-नर्क का नाटक ही खत्म हो जाये।

विष्णु—(मुस्कराकर) हूँ! अच्छा—राष्ट्रपति विलसन महोदय,—

विलसन—मेन पाइन्ट्स आव वार पर किंग विक्रमा और अकबर द ग्रेटने शॉर्ट में कह दिया है। मैं सिर्फ इतना ही कहना चाहता हूँ कि लास्ट ग्रेट वार खत्म कराने मे मेरा बड़ा हाथ रहा। लेकिन अफसोस है कि मेरी शर्तों पर जिस लीग-आव-नेशन्स को कायम किया गया, इम्पिरियलिज्म के हथकंडो ने उसे बेकार कर दिया; दुनिया मे फिर वही रवैया आ धमका। और फिर यह नया वार छिड़ा है, अब भी मेरा दावा है कि मेरी शर्तों के

डिफेक्ट दूर करके उनके जरिये लड़ाई की आग हमेशा के लिए बुझायी जा सकती है।

विष्णु—देवी एनीबेसेन्ट

एनीबेसेन्ट—मैं अपने जातिभाइयो से यह कहना चाहती हूँ कि अधिक नहीं तो कम से कम 'होमरूल' भी इस समय भारतीयो को दे दें तो वे निश्चय युद्ध मे विजयी हो सकते है। दूसरी बात यह कहना चाहती हूँ कि पहचान में भूल भले ही हो, किन्तु 'पूर्व के तारे' का प्रगट होना ध्रुव है।

विष्णु—कबीरदासजी कुछ कहें।

कबीर—बन्दे, तू ही वैरी अपना।
लोभ, स्वार्थ मन कपट भरा है,
ऊपर जग हित रटना॥
धर्म, सचाई की दे दुहाई,
पर को—निज को ठगना॥
एक पिता के सब जाये हैं,
फिर कैसे नहिं पटना।
कहै कबीर सुनो रे भाई,
आपुसहि मे निबटना।
बन्दे तूही वैरी अपना॥

विष्णु—लोकमान्य तिलक जी,

तिलक—अत्यन्त क्लेश की बात है कि सदियो की पराधीनता

ने भारत को इस प्रकार जकड़ रखा है कि जीवन पर, जीवनोपयोगी अन्न और वस्त्र पर भी आज उसका अधिकार नहीं है। इसीलिये मैंने 'स्वराज भारतीयों का जन्म सिद्ध अधिकार है' आन्दोलन चलाया था। क्योंकि मेरा विश्वास है कि स्वतन्त्र भारत ही संसार मे स्थायी शान्ति स्थापित कर सकता है। मैंने उस समय अनुभव किया कि संसार के बलवान राष्ट्र भाँति-भाँति के हथकण्डों से दुर्बल राष्ट्रों का दोहन करके मोटे होते जा रहे हैं और चीन, भारत, अफ्रिका, तथा एशिया के अनेक द्वीपों एवम् भू खण्डों को अपने साम्राज्य-विस्तार तथा व्यवसाय की मण्डी बनाकर, आपस मे एक-दूसरे से बढ़ जाने की प्रतिद्वन्द्विता अनिवार्य कर रहे हैं। पिछला और वर्तमान विश्वयुद्ध उसीका परिणाम है—

सनयातसेन—आपने मेरे हृदय की बात कह दी, मेरा देश इन चालबाजियों का काफी शिकार रहा।

जगलूल पाशा—और मेरा मुल्क भी।

विष्णु—तिलकजी के बाद आप लोग ही बोलेंगे।

जगलूल—तिलक भाई की तक़रीर ही काफी है।

सनयात—अब हम लोगों को और कुछ कहने की ज़रूरत नहीं।

विष्णु—(तिलकजी से) आगे कहिये।

तिलक—पिछला विश्वयुद्ध जिस प्रकार छिड़ा और जैसे उसका अन्त हुआ, उसीमें वर्तमान विश्वयुद्ध का बीज भी था। और इसका अन्त भी यदि इसी प्रकार हुआ तो तीसरे विश्वयुद्ध

की भूमिका तैयार होगी। जब तक बलहीन देशों को दबाकर बलवान बनने की होड़ राष्ट्रों में होती रहेगी, विश्वयुद्ध का सिल-सिला इसी प्रकार रहेगा।

स्वर्य—महाराज, शान्ति का कुछ व्यावहारिक उपाय भी तो बताइये।

तिलक—जैसा कि मैंने कहा है, भारत शीघ्र स्वतंत्र हो, और लड़ाके राष्ट्र उस पर मध्यस्थता का भार सौंप दें, तो विश्वशान्ति की समस्या स्थायी रूप से हल हो जायगी।

विष्णु—कविराज भूषण कुछ छंद पढ़ें।

भूषण—(मूंछोंपर ताव देकर)

साच्यो खट्मंडल भूमंडल में चहूँ ओर,
मेदिनी दरकि उठी, नभ घहरानो है।
मथ्यो जात सिंधु पुनि, पर्वत प्रपीड़ित है,
नदी, नद, वन, वीथी गने को ठिकानो है।
'भूषण' भनत भवसिन्धु ही भवकि उठ्यो,
जीव, जन्तु, जड़, चर, अचर नसानो है।
वोही ज्वाल मृत्युलोक-महाकाल आज इतै,
सरग में सायरन बन घिघियानो है।

विष्णु—(इन्द्र से) देवराजजी, अब आप भी कुछ कहिये।

इन्द्र—मैं क्या कहूँ? हम देवतागण तो आपके आज्ञाकारी हैं। किन्तु फिर भी इच्छा होती है कि देव-सेना लेकर विश्वयुद्ध में कूद पड़ूँ।

विष्णु—किसकी सहायता के लिए ?

इन्द्र—जो धर्मपक्ष पर है।

विष्णु—(मुस्कुराकर) परन्तु, सभी युद्ध-लिप्त-राष्ट्र धर्म, ईश्वर, मानवता और विश्व-सुरक्षा की दुहाई दे रहे है। जो नास्तिक थे, वह भी अब आस्तिक बन गये हैं। तब हम किसे धर्म-पक्ष पर और किसे अधर्म पक्ष पर समझे ?

इन्द्र—हाँ, यह तो...यह तो ठीक है; परन्तु...परन्तु...

स्वयं०—परन्तु-वरन्तु कुछ नहीं महाराज, यही बदला चुकाने का अवसर है। जब-जब जरूरत हुई है, भारत ने देवलोक की सहायता की है। इस समय आप उसकी सहायता अवश्यमेव कीजिये।

विष्णु—भारत मे अनेक व्यक्ति इच्छा या अनिच्छा से युद्ध मे सम्मिलित हैं, और अनेक युद्ध से अलग हैं। तब हम किसकी सहायता करें ?

स्वयं०—(कुछ सोचकर) देव, जो युद्ध नहीं चाहते।

विष्णु—जिनका सिद्धान्त ही युद्ध से अलग रहने का है, युद्ध द्वारा उनकी सहायता करना क्या उचित होगा ?

स्वयं०—भारतवासी सिद्धान्त की रक्षा से उद्धार ज्यादा पसन्द करेंगे। युद्ध से, अवतार लेकर, सुदर्शन चक्र चलाकर, चाहे जिस प्रकार हो, कृपा कर आप भारत का उद्धार करें।

विष्णु - केवल भारत का ?

स्वर्य०—हाँ, केवल भारत का; नहीं-नहीं विश्व का भी।... नहीं-नहीं भगवन्, केवल भारत का ही उद्धार कीजिये।

विष्णु—(हँसकर) होगा, भारत का उद्धार होगा; परन्तु पूर्ण प्रायश्चित के बाद। अनार्यों को घृणापात्र और दास बनाकर, उन-पर मनमानी करके आज वह स्वयं अनार्य और दास बनकर प्राय-श्चित्त पूर्ण कर रहा है। चिन्ता न कीजिये, थोड़ा ही विलम्ब है। गुरुदेव बृहस्पतिजी ने कहा है कि यह प्राकृतिक युद्ध ईश्वरेच्छा-प्रेरित नहीं है। परन्तु, ईश्वर के अतिरिक्त यह कौन ठीक ठीक बता सकता है? जो हुआ होगा, उसी का परिणाम अब हो रहा है। और जो रहा है, उसीमें होनेवाला भी होता जा रहा है। यह निश्चित नियम अनादिकाल से चला आ रहा है और अनादिकाल तक चलता रहेगा। ईश्वर की इच्छा या प्रेरणा उससे अलग नहीं है। विश्व-वेदना की कराह जो सायरन बनकर आज यहाँ सुनाई दी है, पहले भी जब-जब विश्व की ऐसी ही दुर्दशा हुई है,—दूसरे रूपों में अपनी करुण पुकार सुना चुकी है। और उसका निवारण ईश्वर के उसी अटल नियम के अनुसार हुआ है। आज भी विश्व उसी प्रकार शान्ति की प्रसव-वेदना सहन कर रहा है। शीघ्र ही सारी चिन्ताएँ दूर होंगी।

———

रूपक

पब्लिसिटी !

[आजकल आत्म-विज्ञापन-पब्लिसीटी का युग है। कुछ युवक बेचारे इसी सक्रामक-प्रेरणा से हरिजनों के पास जाते हैं। उनकी बातें सुनिये और गुनिये। 'समाज सेवक' कलकत्ता, में प्रकाशित।]

[हरिजनों की एक बस्ती। ५-७ टूटे फूटे झोपड़े। ८-१०
हरिजन ताड़ी पीते नाच-गा रहे हैं।]

मोरे चोलऊ हो, जगवा में रहवऽदिनवाँ चार।
खालऽपीलऽमौज उड़ालऽ, करलऽहँस व्योहार,
का जानी कब नेवता आई, जइबऽटाँग पसार।
धोबी हमरा कपड़ा न धोए, नाउ न काटे बार,
रोग-बीमारी में कोउ न देखे, अइसन विपत के मार। मोरे०
सड़ल-गलल जूठा हम खाईं, रहे के घर नौ द्वार;
गन्दा-गड़हा के पानी पिअइले, है ई नरकवा के मार। मोरे०
छाया पड़े, भिनसर मुँह देखे, दें सब गाली हजार;
कुत्ता-बिलाई से नीचा गिनाइले, येही है गतिया हमार। मोरे०
भीतर अन्न, न तन पर बस्तर, ना कोई देखन हार;
यही सब दुख से ताड़ी पिअइले, ना हम चोर-लबार। मोरे०

[४-५ सुधारक नवयुवक आते हैं। एक के हाथ में कैमरा है। हरिजन चुप हो जाते हैं। दोनों दलों में बातें होती हैं—]

पहला नव०—भाइयो, नशा पैसे बरबाद करता है और अकल भी।

पहला हरि०—बाबू, नशा तो बड़े लोग करते हैं। हम लोग तो दुख भुलाने के लिये घिनौने जीवन से कुछ देर मन हटाने के लिये दवा पीते हैं। और न हमारे पास पैसे हैं—न अकल ही, जो बरबाद होंगे।

[नवयुवक एक-दूसरे को देखते हैं]

२ रा नव०—नशा के साथ अगर गंदगी भी छोड़ दो, तो समाज तुम्हे अपनाने लगेगा।

२ रा हरि०—गन्दगी ! (दुख की मुस्कुराहट से) मालिक, गन्दगी उसे अखरती है, जो पवित्र हो। मैला वही होता है, जो साफ़-सुथरा हो। यहाँ तो खुद गन्दे हैं-मैले हैं। गन्दगी हम से अलग ही कहाँ है!

(नवयुवक आपस मे संकेत करते हैं।)

३ रा नव०—भाई, तुम लोगो के लिये उस गाँव मे पाठशाला, अस्पताल, मन्दिर, कुँआ वगैरह खोल दिये गये हैं।

४ था नव०—अपने बच्चो को पढ़ने के लिये भेजो, और खुद भी आओ। कोई बीमार हो, उसकी दवा कराओ और, मन्दिर मे—

१ ला हरि०—महाराज, अगर हम लोग वहाँ जायँगे तो आपका सब इन्तजाम छुला जायगा। ऊँची जातिवाला वहाँ न आएगा—

२ रा हरि०—और हम लोगों की पढ़ाई या सिखावन तो हम-लोगो का काम है—बड़े लोगो के समाज की गन्दगी साफ़ करना। इससे किसी तरह एक शाम आधा पेट चलता है। पढ़ने लगे, तो वह भी बन्द हो जाय।

३ रा हरि०—बाबू, यह हम लोगों के अगले जन्म का पाप है कि हम जानवर न हुए। मानुस-तन पा के हमारी दशा चमगादड़

से भी गई-बीती हैं। न इधर के, न उधर के। आदमी में शरण नहीं, जानवर में गिनती नहीं।

(युवक आपस में देखते हैं)

१ ला नव०—कम से कम नहा भी लिया करो, तो मन्दिर में तुम लोगों का प्रवेश—

१ ला हरि०—इन चीथड़ों के सिवा है क्या, जो नहाकर पहनेंगे?

२ रा हरि०—अच्छा बाबू, यह तो कहिये, कि जो लोग नहा-धोकर—पवित्र बनकर, मन्दिर में भगवान का दर्शन करते हैं, वह फिर पाप नहीं करते होंगे?

२ रा नव०—नहीं······करेंगे कैसे? करना ही नहीं चाहिये।

३ रा हरि०—'करेंगे कैसे?' 'करना ही नहीं चाहिए'—यह तो हम लोग भी जानते हैं। यह कहिये—करते हैं या नहीं?

(नवयुवक आपस में एक-दूसरे का मुँह देखते हैं)

१ ला हरिजन—खैर, सुनिये। अगर भगवान कहीं हैं, तो जिस हालत में उन्होंने हम लोगों को रख छोड़ा है, उसी में दर्शन देंगे।

४ था हरिजन—अरे छोड़ो इन सब झंझटों को, हमारा भगवान तो (ताड़ी भरे चुकड़ हाथ में उठाकर) यह है।

१ ला नव०—अच्छा, इस समय तो हम लोग जाते हैं फिर कभी आयेंगे। अब ज़रा तुम लोग सीधे—इस तरह—खड़े हो जाओ। फोटू ली जायगी।

पहला हरि०—ओ...अखबार मे छपाने के लिये।

दूसरा हरि०—कि नेता बाबू लोग हरिजनो की सेवा करने गये थे।

तीसरा हरि०—फिर तो आप लोगो की खूब ही तारीफ़ होगी।

चौथा हरि०—अच्छा, तो ले ही लीजिए फ़ोटो, क्योंकि इतना भी न होने से आप लोग दुखी होंगे। लेकिन कुछ हम लोगो की ख़ातिरदारी भी कबूल कीजिये। ताड़ का मीठा रस बड़ा ही फ़ायदेमन्द होता है। सुना है बड़े-बड़े नेताओं के चेले भी पीने लगे हैं।

१ ला नं०—हाँ हाँ, नीरा, मगर....

२ रा हरि०—बहुत सफ़ाई से लाता हूँ; घबराइए नहीं। जिस बर्तन मे रस चू रहा है, उसमे हम लोग मुंह नहीं लगाते। वह देखिये; उतारा जा रहा है।

[एक हरिजन रस लाता है। युवक असमंजस मे पड़े से दिखायी देते हैं।]

पहला हरि०—क्यो बाबू, इसी हौसले पर हम लोगो का उद्धार करने चले हैं आप?

[जोश मे आकर पहला नवयुवक जैसे ही पीने लगता है कि युवको के ४,५ गार्जियन झट से आते हैं और 'पापी' 'अछूत' 'भ्रष्ट' आदि कुवाक्य कहते हुए युवको को मारते-पीटते ले जाते हैं। हरिजन हँसते हुए फिर गाने-बजाने लगते हैं।]

—:❀:—

रूपक

ब्लैक-मार्केट

यह वर्तमान समय की जीती-जागती-बोलती तसवीर है। जन-आन्दोलन और इस (ब्लैक मार्केट) से क्या सम्बन्ध है, रहस्य-हास्य के व्याज से गुदगुदाकर बताया गया है। और भी इसमें बहुत-कुछ है।

[१९५० का पतझड़। ११ वजे रात। इस्टसंघपुर का एक बढ़िया बागीचा। फाटक भीतर से बन्द, ४ बन्दूकधारी सन्तरी चौकसी मे चक्कर काटते हुए। बीच बंगले के भी सभी द्वार-खिड़की बन्द। उसके अन्दर अंग्रेजी ढंग पर सजे कमरे मे बिजली का प्रकाश, एक फैन भी हौले-हौले चलता हुआ। संगमरमर के अंडेनुमा एक बड़े टेबुल की किनारियो से लगी कुर्सियो पर भिन्न-भिन्न वेष-भूषावाले १२ व्यक्ति बैठे हुए। शायद बातचीत का सिलसिला देर से चालू है।]

क्रोकोडाइलसन—मुझे खुशी है कि इतनी देर की बातचीत के बाद इस नतीजे पर पहुँच गये कि हम सब का एक ही कामन-एनिमी-शत्रु है, कांग्रेस, और चुनाव मे, चाहे जैसे भी हो उसे डिफीट देना है। अब हमे इसके उपाय पर विचार करना चाहिये।

कामरेड पिलपिल—उपाय तो शुरू कर दिया गया है मिस्टर! कम्युनिज्म का भयंकर बवंडर आज सारे हिन्द-यूनियन को झकझोर रहा है। कुछ ही घण्टे मे उसका एक नन्हा शिगूफ़ा फुटकर रंग लानेवाला है।

स्वामी घुरघुरा शास्त्री—परन्तु धर्म, जाति, संस्कृति और साम्प्रदायिक—उभाड़ के कारण ही आज जनसाधारण मे कांग्रेस-सरकार के प्रति विद्रोह विस्तार है। उसका सबसे विराट बल गांधी को भी समाप्त कर दिया गया। अतः इसी कार्यपद्धति को व्यापक बनाना अत्यावश्यक है।

गयी थी। घर के लोग परेशान थे कि इन्हें क्या होगा? अलबत्ता छोटे—सब से छोटे घमधूमरमल जानते थे, क्या कारण है। उधर नवयुवकों में जो नटखट थे, अक्सर रास्तों में प्रणामादि की आड़ में बिचारे को छेड़ दिया करते। कोई कहता—"जय रामजी की नाऊजी!" दूसरा कहता "राम राम, दादाजी!" इन मीठी चुटकियों से मन-ही-मन बिचारे तड़प जाते और, जिन ध्वनियों में सब को उत्तर देते—अथवा जिन प्रतिहिंसापूर्ण झेंप की हसरत भरी क्षणिक चितवनों से उन नटखटों की तरफ़ ताक कर नज़र चुरा लेते, उसका वर्णन करना किसी अक्खड़ कवि का ही काम है।

दो महीने बाद जैसे उनकी तबीयत ठीक हो गई हो। अब ठीक-ठिकाने से लोगों से मिलने-जुलने लगे। मगर भीतर-ही-भीतर घातक-ताक में लगे रहते कि कैसे उन दुष्ट युवकों से बदला लें। अधिक गुस्सा सोहन पर था। वही सबका सरदार था। हरदम यही चिन्ता उनके कलेजे को कचोटती रहती थी कि डेढ़ हज़ार रुपये ठगे गये। बाप रे बाप डेढ़ हज़ार.. रुपये!! तिस पर वह ऐसे काम में खर्च होंगे, जिनके वे प्रबल विरोधी थे? अतएव सोते, जागते, खाते, पीते,—हरदम प्रतिहिंसा के कल्पना-जगत में विचरण किया करते।

एक रात की बात है। करीब ११ बजे होंगे। सेठजी किसी दूर के महल्ले से लौट रहे थे। अकेले ही थे। जल्दी के मारे सदर

छोड़कर गली के रास्ते आ रहे थे। उसी लेन मे सेवा-समिति का दफ्तर था। जैसे ही पास पहुँचे कि खिड़की से किसी की मधुर—औरतनुमा आवाज़ आई—"प्यारे! मुझे छोड़कर और कही मत जाओ। तुम्हारे पैरो पड़ती हूँ।" साथ ही कोई बोला—"हट चुडैल, मै तुझे तनिक भी प्यार नहीं करता।" सेठजी को यह आवाज़ पहचानी हुई-सी जान पडी। ख्याल ने चौंका दिया कि अरे, यह तो सोहन है। फिर क्या था? प्रतिहिंसा-की अग्नि धधक ही रही थी, और भी प्रज्वलित हो उठी। सोचा, "सेवासमिति के कमरे मे इतनी रात को कौन स्त्री सोहन से इस तरह बातें कर रही है। जरूर कुछ दाल मे काला है।" कुछ और सुनने की अभिलाषा से खिड़की के नीचे साँस रोककर खड़े हो गये, पर सिवा कुछ अस्पष्ट वार्तालाप के और कुछ न सुनाई पड़ा। तब, दरवाजे के पास आये। देखा कि लाप-रवाही से उसके दोनों पल्ले भिड़ाए हुए है, और कुण्डी मे ताला-चाभी लटक रहे है। दरवाजा खोलने की हिम्मत तो नहीं हुई, पर धीरे से कुंडी चढ़ा, और ताला मे चाभी लगाकर फुरती से लोगो को खबर देने चल पड़े। सोचते जाते "इतने दिनो के बाद, आज बदले का अवसर आया है। साले को खूब सज़ा दिल-वाऊँगा। ओह, कितना बड़ा ढोंगी और पापी है। बदमाश! सेवा-समिति मे यह कुकर्म!!!" इस समय की इनकी फुरती देखने ही योग्य थी। जैसे सरकस का सिखलाया हुआ—छोटा

राजपुत्र दो पैर पर उछलता हुआ जा रहा हो। सबसे पहले सेवा-समिति के सभापति को जगा, नोन-मिर्च के साथ सारी बातें बना-कर वहाँ चलने को तैयार किया। फिर चोखन्दर दास, लाला पापड़मल, गोबर गणेश चौधरी, बुकरातीलाल आदि ७-८ उन मुहल्ले के नामी-गिरामी लोगों, तथा थाने के जमादार और दो-तीन सिपाहियों को साथ लेकर सेवा-समिति के दफ्तर पर धावा बोल दिया। वहाँ पहुँच कर सभापति, इशारेसे सब को चुप रहने का आदेश देकर दरवाजे के पास-पास गये ही थे कि भीतरी कमरे से किसी औरत की आवाज आई—"हे भगवन्! मेरी रक्षा करो।" साथ ही किसी ने जोर से कहा—"चुप हरामजादी!" अब क्या था? जो थोड़ी-बहुत शंका लोगों को थी, दूर हो गई! सभापति ने धीरे से ताला खोला और फुर्ती से किवाड़ों को हटा दिया। सब-के-सब भीतर हाल में जा पहुँचे। मगर सामने जो निगाह गई तो शर्मिन्दा और चकित हो रहे। सेठजी के काटो तो लहू नहीं। धम्म से धरती में लुढ़क गये। इन लोगों ने देखा कि सोहन बाएँ हाथ में किताब लिये खड़ा है, और उसके सामने एक लड़का घुटना टेके हुए है। कुछ दूर पर और ४-५ नवयुवक कुर्सियों पर चुप बैठे हैं। उन लोगों ने चौंक कर क्रोध-भाव से इन तरफ देखा। सोहन ने कहा—"इस तरह रिहर्सल में आप लोग एकाएक क्यों आए?" फिर सभापतिजी को देख कर प्रणाम किया। सभापति ने सोहन को शान्त

करते हुए लोगो से कहा—"भाइयो, सेठजी जैसे हैं, प्रगट ही हैं, मगर आज यह और भी ज़ाहिर हो पड़े।" सबने सेठजी की ऐसी मानसिक मरम्मत की कि उनकी नानी मर गई। घृणा, क्रोध, अपमान और उपेक्षा की घनघोर वर्षा होने लगी। एक झूठी बात के लिये सोते से जगा कर लाना, लोगो का खून खौल रहा था। मगर सभापतिजी की वजह से सभी चुप रहे। जमादार साहब उन्हे पकड़ कर थाने मे बन्द करने की ही फ़िक्र करने लगे। सोहन ने कहा—"हॉ जमादार साहब! ये हजरत समाज-के ऐसे ही खतरनाक सनीचर देवता हैं, इनकी पूजा बड़े घर ले जाकर ही कीजिए। नहीं तो इसी तरह लोगों को सताते रहेगे।' बिचारे धमधूसरजी की जो दुर्दशा हो रही थी, उसकी पाठक खुद कल्पना करे! अन्त मे उन्होने हाथ जोड़ कर—और शायद सच्चे मन से प्रतिज्ञा की कि फिर कभी ऐसी गलती न करूंगा; और न किसी अच्छे काम का विरोध ही करूँगा।' और इस कुकर्म के प्रायश्चित्तस्वरूप एक हजार सेवा-समिति को और पचीस रुपये पुलिस वालोको देनेका वादा किया। फिर बडे स्नेहसे सोहन का हाथ पकड़ लिया।

———

कहानी

बाबू मालिश !

शोख छोकड़ों की मनोरंजक सरम्मन। मीठी-मुस्कान पर सिनेमा-संसार की एक क्षणिक चमक। 'विश्वबन्धु', कलकत्ता, और 'तिर्हुत समाचार', मुजफ्फरपुर, में प्रकाशित

रोज शाम को कालेज स्क्वायर टहलने जाया करता हूँ। चाहे जितनी भी देर हो जाये, ड्यूटी से चूक नहीं होती। तालाब के चारो ओर ८-१० चक्कर लगाता हूँ—तेजी से। और फिर, पास की बेंच पर बैठकर शरीर से सुस्ताता हूँ, मगर मन को, कल्पनाओ की तरंगो मे बेरहमी से वहा देता हूँ। उसके डूबने का डर नहीं रहता। डूबता है, तभी कुछ-न-कुछ ले आता है।

हाँ, तो आज भी चक्कर काटने पहुँचा। आधे ही चक्कर मे मिल गये श्री शिवशंकर शर्मा। बस, मै पूरे चक्कर मे पड़ गया।

बात यह है कि जब से इस-सिनेमा-लाइन मे आया हूँ, सिफारिश चाहनेवाले उम्मीदवारो को टालते-टालते, तंग आ गया हूँ।

बाहरवालो की चिट्ठियो का ऐसा जवाब देता हूँ कि किसी की हिम्मत दुबारा लिखने की नही होती। यहाँवाले घर पर ही आकर दिमाग चाटने लगते है। जब बहुत हैरान हो गया, तो कमरे मे यह लिखकर टाँग दिया—

"कोई महाशय सिनेमा मे नौकरी दिलाने के बारे मे बात न करें।"

फिर भी कोई जब बहुत ही पीछा करता, तो डायरेक्टर से मिला देता। अगर सिप्पा भिड़ गया तो उनका भाग्य, नहीं तो मेरा पिंड छूट जाता।

शिवशंकर जी भी 'बहुत पीछा करनेवालो' मे से ही थे।

उन्हें मालूम था—मैं शाम को कहाँ जाया करता हूँ। बस, आज यहीं भिड़ गये।

मैंने भी सोचा, आज उन्हें खूब ही निराश कर दूँ। बस, अखबार काटना बन्द कर दोनों एक बेंच पर बैठ गये। और मैं लगा उन्हें उलटा-गीता पाठ पाठ पढ़ाने। जिस 'महाभारत' में वे कूदना चाहते थे, मैं उन्हें तरह-तरह के "उपदेश" देकर अलग ही रहने को समझाने लगा! मगर वह काहे को सुनते! 'अर्जुन' की तरह सवाल-पर-सवाल करके मेरा नाक में दम करने लगे।

इसी बीच एक १२-१३ साल का ढीठ लड़का, साथ में ६-७ साल के छोकरे को लिये, पास आकर बोला—

'बाबू मालिश'! मैंने कहा 'नहीं'। दोनों चले गये, और मैं अपने 'पार्थ' को समझाने लगा। थोड़ी देर बाद फिर छोकरे आ डटे। 'बाबू मालिश कराइयेगा?'

गीता—रचना में डिस्टर्ब होते देख, मैंने जरा डाँटकर कहा—'नहीं रे नहीं, जबरदस्ती मालिश करेगा क्या?'

छोटा बोला—'नहीं बाबू, हमलोग खूब बढ़िया मालिश करते हैं।' मेरे मित्र ने तनिक क्रोध से कहा—'जाओगे नहीं यहाँ से?' दोनों फिर निराश होकर लौट गये। मैं जल्दी-जल्दी अध्याय पूरा करने लगा।

बहुत से उदाहरण देकर समझाया कि नए आदमियों को इस लाइन में घुसने के लिए कितनी कठिनाइयों का सामना

करना पडता है। एक तो कलकत्ता मे हिन्दी-फिल्म-व्यापार यो ही ठंड़ा है। जो कुछ है भी, उसमे से भी, बराबर छँटाई होती रहती है। तिस पर पक्षपात! फिर नए आदमियो की गुंजायश किस तरह हो? और—

मेरे 'सखा' बीच ही मे बात काटकर कुछ कहना ही चाहते थे कि वे दोनो 'विघ्न' इधर-उधर चक्कर काटकर फिर आ धमके। न जानें वे दोनो मुझे पहचानते थे, या उन्हे सचमुच कुछ आमदनी न हुई थी। इस बार बड़ा छोकड़ा मुस्कुराता हुआ बोला—

'बडे बाबू, सच कहता हूँ—ऐसी मालिश कर दूँ, कि आपकी तबीयत खुश हो जाय। ज़ियादा नहीं, सिर्फ एक आने की ही तो बात है। अगर पाँच मिनट मे आपको नींद न आ जाय, तो एक कौड़ी मत दीजिएगा।'

जी मे तो आया, एक-एक चाँटा रसीद कर दूँ, मगर कुछ सोचकर गुस्सा पी गया। शिवशंकर झपटे उसकी तरफ़। मैने रोक लिया। दोनो छोकड़े मुस्कुरा रहे थे। छोटा फिर बोला 'हुजूर, मालिश।'

वड़ा शरारती लहजे मे कह उठा— 'बाबू मालिश'

मैने सोचा, बच्चे हैं तो क्या, इन्हे इन्ही की तरह सज़ा देनी चाहिए। तब मैने उनसे कहा—'कितने पैसे लोगे'? बड़ा छोकडा बोला 'सिर्फ एक आना हुजूर।'

मैने कहा 'जिसे कहूँ, उसकी मालिश करोगे?' दोनो बोल उठे—

'हाँ, सरकार ।'

मैंने दो पैसे पाकेट से निकालकर बड़े को पेशगी देते हुए कहा—'अपने साथी की मालिश करो' इतना सुनते ही दोनों अकचकाए। तब मैंने पैसेवाला हाथ खींच लिया और कहा—'मुझे मालिश की ज़रूरत नहीं है, अगर तुम्हें पैसे चाहियें तो जिसे मैं कहूँ, उसकी मालिश करो, नहीं तो जाओ। और फिर दुबारा आकर दिक करोगे तो, इस बार पिटोगे।'

अब तो दोनों आपस में एक-दूसरे का लगे मुँह ताकने और हँस मुस्कराने।

बड़े ने देखा कि आया हुआ पैसा जा रहा है, तब वह छोटे को समझाने लगा। छोटे बेचारे की तो गोलती बन्द।

बहुत 'ना' 'नू' के बाद वह नीमराज़ी हुआ। तब बड़े ने उस पर हाथ फेरना शुरू कर दिया। एक-दो मिनट में ही छोटा चिचिया उठा।—आखिर में रो पड़ा। बड़ा उसे समझाने की कोशिश करने लगा। आसपास के बहुत से लोग तमाशा देखने इकट्ठे हो गये और असलियत जानकर हँसने लगे। जब मैंने देखा कि काफ़ी सज़ा हो गई तो मालिश रुकवा कर उनके पैसे दे दिये।

कहानी

भोली भक्ति

वैसे तो यह है बच्चों की कहानी, पर शकर पार्वती सवाद का रहस्य-प्रकाश युवक-बूढो को भी तत्वज्ञान के साथ मनोरंजन देता है । 'जागरण' काशी, और 'समाज-सेवक', कलकत्ता में प्रकाशित ।

"देखो रघुनाथ, अमलानन्द कैसा चलिया उआअय"

"आउन्ह मेलाची"

"मेलाची"

रघुनाथ—"हाँ हाँ, इसका चरित्र हुआ हय।"

"मैं तेंआँ, मेला तोल दिया।"

रघुनाथ—"नहीं, तोरे उसको कहम"

"गँ गँ गँ, अमला नाल गिरा दिया, ऊँ…ऊँ…ऊँ"

रघुनाथ—"देखो कमल, तुमने उसी का घर गिरा दिया कान पकरो…।"

❀ ❀ ❀ ❀

शरद् का शीतल प्रभात था। गुलाबी जाड़े की लोरियाँ अभी भी गाई जा रही थीं। बाल—रवि ने प्रकृति के हरियाले बासनों में परोसे हुए आकाशी-मोतियों का नाश्ता करके, रेतकी भीगी चादर में, अभी अभी मुँह पोंछना आरम्भ किया है। मोदपुर गाँव से गल-बहियाँ डाले बहती हुई गन्डकी के एक कम चालू घाट पर थोड़े से स्नानार्थियों का शान्त कोलाहल जारी है। ५–७ छोटे-छोटे बाल-बालिकाओं की टोली, गीली रेतीमें पैरोंके सहारे घर बनाने का खेल खेल रही है। सभी की उम्र ४ से ७ की होगी। सभी नंगे हैं। किसी-किसी के शरीर पर जाँघिया और कुरता है। एक रघुनाथ ही सबमें बड़ा और कुछ समझ-

दार है। कमल ने जब उमा का घर ढाह दिया, तब उसने उसे कैसा दण्ड दिया, यह आपको मालूम है।

❀ ❀ ❀ ❀

थोड़ी देर में, स्नानार्थी निवृत्त होकर, घाट के जागते देवता 'चुनेश्वर महादेव' के दरबार में हाज़िर हो चुके हैं। बालू की पालिश से चमकते हुए लोटों में गंडकी का जल भरे, भूतनाथ भगवान पर चढ़ाते, 'बम्-बम् महादेव' के नारे लगाते हुए भक्त लोग धीरे-धीरे घर लौटने लगे। उधर बाल-मण्डली में कनैठी लीला ने सारा गुड-गोबर कर दिया। सबके घर बिगड़ गये। घाट को सूना देख, अन्त में इन लोगों ने भी जल्दी-जल्दी नहाना और जलक्रीडा में घर बिगड़नेवाले गम को डुबाना शुरू कर दिया। खूब ऊधम मचा लेने के बाद, चलते समय प्रस्ताव होने लगा।

रघुनाथ ने कहा—"हम भी महादेवजी को जल चढ़ावेंगे।"

कमल—"असबी चरावेंगे।"

उमा—"असबी"

गायत्री—"ईयाॅ छे ले कैसे जाओगे ?"

रघुनाथ—(कुछ सोचकर) "ईंजुली में"

बस क्या था, सबो ने अँजुलियाँ भरनी शुरू कीं और भर-भर कर जैसे ही कुछ बढ़े कि वे मुफलिस हो चलीं। मन्दिर तक जल ले जाना मुश्किल हो गया। फिर परामर्श होने लगा।

गायत्री ने कहा—"आज छोल दो, कल लोता लायेंगे" मगर

बहुमत की जोरदार इच्छा हुई कि नहीं आज जरूर चढ़ाया जाय —चाहे जैसे भी हो।

विमल की सलाह हुई कि पत्तल का दोना बनाकर काम लिया जाय। पर व्यवहार में वह भी बेकार साबित हुआ। अन्त में बहुत तर्क-वितर्क के बाद यह निश्चय हुआ कि—"खूब कुल्ला करके भीतर से मुँह खूब साफ करें, एक-एक पवित्र कुल्ला जल लेकर चला जाय और 'बाबा' पर चढ़ाया जाय।"

मन्दिर में सन्नाटा हो चला था। पुजारी महाराज रसोई-पानी में जा लगे थे। उसी समय भोले-भाले शम्भु के भोले-भाले भक्तों की अपूर्व जल-ढरी आरम्भ हो गई!

* * * *

पार्वती तमक उठीं। मुँह लटका लिया। उठकर जाने लगीं। बनावटी आश्चर्य से बाँह पकड़ कर नटराज ने पूछा—"कहाँ चलीं।"

पार्वती—"बस छोड़ दीजिये, हटिये।"

भगवान—"आखिर हुआ क्या? कुछ कहो भी तो।"

पार्वती—"आप औघड़ हैं-पूरे अघोरी।"

शिव—"अरे यह तो सभी जानते हैं, कोई नयी बात नहीं है।"

पार्वती—"हाँ नयी, एकदम नयी बात है और साथ ही घृणित भी (मुँह बिचका कर) ओह, राम-राम।"

शंकर—(मुस्कराकर) साफ़ तो कहती नहीं, बेकार घृणा प्रकट कर रही हो।"

पार्वती—"आप तो जान-बूझकर, अनजान बने, विनोद कर रहे हैं। अभी-अभी आप पर कैसा पवित्र और सुस्वादु जल चढ़ाया गया है।"

महेश—(बैठाते हुए) "बस, इतनी सी बात! मालूम होता है, उस अप्राप्य देव-दुर्लभ-तरल राशि को अकेले ही डकार गया, इसी से तुम अप्रसन्न हो। अच्छा, कल रहा सब-का-सब तुम्हारे ही हिस्से में।"

पार्वती—(फिर उठने की चेष्टा करती हुई) "देखिये मुझे मतली आने लगेगी। राम राम! गन्दे बालकों के अपवित्र मुँह का दुर्गन्धयुक्त जल! छि छिः!"

विश्वनाथ—"सच कहता हूँ देवि, जीवन में ऐसी भेंट कभी मयस्सर न हुई थी। गंगा से भी अधिक पवित्रता, अमृत से भी अधिक स्वाद, सोम रस से भी अधिक मादकता और मधु से भी बढ़-चढ़कर मिठास! ओहो हो, अभी तक जीभ चटपटा रही है।"

पार्वती—(चिढ़कर) "जाइये, इस बारे में आपसे कुछ कहूँगी ही नहीं। किन्तु कृपया अब से मेरे पात्रों को जूठा ··।"

महादेव—"भूधर-भूपति की मानिनी कन्या, तुम व्यर्थ ही मान कर रही हो। आश्चर्य है कि तुमने उन भोले शिशुओं का भाव नहीं परखा।"

पार्वती—"क्षमा कीजिये, जब धर्म और आचार पर घृणित आघात हो, तो केवल कोरा 'भाव' देखकर क्या होगा? राम राम! कहाँ वह स्नान से पवित्र, विशुद्ध वस्त्र पहिने भक्तों के धोये-माँजे पात्रों का पवित्र जल और कहाँ मुँह के थूक-खखार और लार का मिश्रित—एकदम अशुद्ध पानी!"

शम्भु—'मालूम होता है तत्कालीन-रूढ़िवादी-धार्मिक संस्कार का सर्वान्तर तुम्हारे पर भी चढ़ बैठा है। अच्छा बताओ संसार हमारी उपासना किस प्रकार करता है?'

पार्वती—"आपकी मूर्त्ति का ध्यान या पूजा करके"

बमभोला—(हँसकर) "मेरी मूर्ति? कहाँ है?"

पार्वती—"वही जो शिवालयों में प्रतिष्ठित है।"

महेश—(जोरसे हँसकर) "आज तुम्हें क्या हो गया है प्रिये? क्या वहाँ मेरी मूर्ति है—प्रतिमा है?"

पार्वती—"संसार तो यही समझ कर पूजता है।"

कैलाशपति—"किन्तु, तुम भी कह सकती हो कि वह मेरी ही मूर्ति है? उसके न हाथ-पैर हैं, न मुँह है और न अंग-अवयव ही हैं, केवल एक गोल और लम्बा शिला-खण्ड मात्र है। उसमें और मुझ में समानता कैसी?"

पार्वती—मूर्त्ति न हो, समानता भी न हो, किन्तु संसार तो उसीको आपका सूक्ष्म-मानचित्र मानकर उपासना करता है।"

अखिलेश—अब आयीं राह पर। उसी सूक्ष्म मानचित्र में

'भाव' का रहस्य छिपा हुआ है। मेरी यथार्थ मूर्ति कल्पना के परे है, क्योंकि न तो उसे किसी ने देखा है और न देख ही सकता है। इसलिये लोग अपनी भावना-कल्पना के अनुसार मेरी अलख-अगोचर मूर्ति को एक केन्द्र-बिन्दु मे अवस्थित मानकर मेरी उपासना करते है। जिस तरह गंगा की पवित्रता उसकी एक बून्द मे परखी जा सकती है, सूर्य की महत्ता एक छोटे छिद्र द्वारा आयी हुई उसकी रश्मियो से मापी जा सकती है, उसी प्रकार शिवालयो मे प्रतिष्ठित पत्थर के उन छोटे शिला-खण्डो से सारे विश्वब्रह्माण्ड के इस अविनाशी अधिपति का अन्दाजा लगाया जा सकता है। फिर जब सारा जगत भाव की पूजा करता है, तब मै पूजापति होकर सच्चे भाव की गंगा मे पवित्र की हुई वस्तु की श्रेष्ठता क्यो न अनुभव करूँ ?"

पार्वती—(कुछ ठहर कर)—"आप से तर्क मे कौन जीत सकता है ? परन्तु उन अबोध और मध्यम-संस्कारी शिशुओ के भाव का क्या ठिकाना कौतूहल वश बडो की देखा-देखी किये गये कार्यो मे भाव की सूक्ष्मता की कसौटी क्या ?"

हर—"हाँ, इसका निर्णय परीक्षा द्वारा किया जा सकता है। अच्छा कल प्रातःकाल उसी समय तैयार रहना।"

× × × ×

दूसरे दिन भक्त-मण्डली ठीक समय पर स्नान-आदि से निवृत्त हो बाबा के मन्दिर मे इकट्ठी होकर भजन-पूजन मे तल्लीन है। एकाएक बड़े

कहानी

नापाकिस्तान

'ससार' के होली-विशेषाक (१९४५) में जब यह रचना प्रकाशित हुई, लेखक के पास कई प्रशसात्मक पत्र आए। बम्बई के एक गुजराती साप्ताहिक, दिल्ली के उर्दू ·········सिने साप्ताहिक और मुज़फ्फरपुर' के 'तिरहुत समाचार' ने भी इसे प्रकाशित किया। इसमें जो कुछ है, दिल-ओ दिमाग के लिये बहुत कुछ है। इस सग्रह का अतिम अश असामयिकता के कारण हटा दिया गया है।

वगैरह से छुट्टी पाते ही जादू सर चढ़ बैठा। विशुद्ध नशा के बदले दिमाग में चक्कर आने लगे। तबीयत बदमज़ा हो गई। रंग बदरंग हो चला। मित्रों की मजलिस की मजेदारी सारी गई। निश्चित कार्यक्रम रद्द हो गया। पेड़ के नीचे खाट पर जा लेटा। क्षण में ही सरूर का गरूर सातवें आसमान कुछ ऐसा चढ़ा कि मैं अप-रूढ़-कल्पनाओं की घुड़दौड़ में बेतहाशा बाज़ियाँ लगाने लगा।

एक अनोखी योजना सूझ गई। सोचा इन दिनों हर तरफ 'इस्तनानों' की धूम है। कोई 'पाकिस्तान', कोई 'हिन्दू-इस्तान', कोई 'पाठानिस्तान', कोई 'द्राविड़िस्तान' कोई 'आर्यिस्तान', तो कोई 'अमुकिस्तान' बना रहा है। ध्यान में आया यह सभी एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं—एक ही 'इस्तान' के पर्यायवाची। निर्बलों पर सदैव के लिए अधिकार रखने की, बलवानों की साज़िश है। संसार में सारे अनर्थ की जड़ यही है। इसे दूर किए बगैर सच्ची शान्ति नहीं स्थापित की जा सकती। तरंग में तड़ित वेग से चट उपाय भी सूझ गया।

संसार में जितने दुखी, असहाय, पीड़ित और कमजोर जीव है—चाहे वे दो पाये हों या चौपाये—सबों का संगठन करने के लिए, एक अलग 'इस्तान' 'नापाकिस्तान' के नाम से कायम हो जो बलवानों के 'पाकिस्तान' से एकदम दूर रहे।

सोचते देर न लगी कि दुर्लभ सोमरस की कृपा से क्षण भर में ही वह विराट् बस्ती बस गई और मैं वहाँ का राष्ट्रपति चुन

के साथ एक तगड़ा गधा कनौतिया चढ़ाये खड़ा है। मुझे उसपर बैठाकर मेरे दोनों तालबैताल दोनो बछेड़ो पर जा बैठे। मिरजा ने कहा—'जोर से दोनो कान पकड़े रहिएगा"...हॉ, हॉ, हॉ, अरे अपने नही, गधे के कान पकडिए।' और सचमुच लम्ब-कर्णजी के कान पकड़ते ही, ऐसा मालूम हुआ—मानो मैंने कोई कल दबा दी। ओह, तीनो सवारी हवा मे उड़ चली। ख्याल आया, ऐसा तेज चलनेवाला विमान अब तक नही बना होगा। क्योंकि कसम सिल-लोढ़े की, बात की बात मे, हमलोग नियत स्थान पर जा लगे।

अब मेरी निगाह और मेरे कान, जैसे ही उस दृश्य और आकाशभेदी कोलाहल पर अटके, तो क्या पूछते हैं आप, कि बस, मत पूछिए! दद्दा रे दद्दा, मेरी तो सिट्टी-पिट्टी गुम! उफ्फोफ, ऐसा न देखा, न सुना।

एक बहुत बडे मीलो लम्बे-चौड़े मैदान मे, हजारो गधे-गधियो का विराट-महासम्मेलन जुटा हुआ है। हेंको हेंको, हॉव ऑव खुर-खर, ओर सट-पट की आवाजों से वायुमडल मे एक विचित्र निनाद फैला हुआ है।

बीच मे रास्ता बना हुआ था। उसके दोनो ओर युवक-युवती गधे-गधियॉ कतार मे—एक साथ कान ऊपर उठाए हुए—खड़े थे। हमलोग छहो जीव, शान से बीच मे पहुँचे। वहॉ काफी जगह छुटी हुई थी, जिसमे ताजे ताजे धाए-धुखाए बिना

बाहर से चर-चुर कर आते,
टाँगो मे फंदा लगवाते॥
बस बोली है बहुत करारी,
चिल्लाहट है इनकी भारी।
हरदम हेको हेको कहते,
रोते हैं या हँसते रहते'

इस पर जो कुहराम मचा है कि बाप रे बाप, कान के पर्दे फँटने लगे। मैने दोनो कानो मे उँगली डाल ली। कह नहीं सकता कि युद्ध मे हजारो बमो के फटने से भी ऐसा वज्रघोष होता होगा या नहीं। शीघ्र ही लँगड़ी धोबिन का तगड़ा गधा ढिढ़सदरा उठा और अपनी रेक्क-बोल मे न जाने क्या ललकार उठा कि कोलाहल शान्त हुआ। पता चला, आप स्वागत-मंत्री हैं।'

इसके बाद, बंठारामजी स्वागत-भाषण को उठे।

'हमलोग जगदम्बा के बाहन हैं। महाप्रतापी राज-राजेश्वर लंकेश महाराज श्री रावण जी के दसो सर मे—सबसे ऊपरवाला सर हमारा ही था। एक बार नारदजी को भी हमारा मुख धारण करना पड़ा था। हमारा महत्त्व बहुत बड़ा है। हम वस्त्र-विशुद्ध-वाहन हैं। कहीं हमसे खेती कराई जाती है, कहीं सवारी ली जाती है, कही बोझे ढोआये जाते हैं। और हमारा दावा है कि बोझे ढोने मे हमारी बराबरी कोई जीव नही कर सकता। (इस पर तमाम गधे कान फटफटा उठे) हमारी और घोड़े की

नस्ल असल में एक ही है, मगर स्वार्थी मानव-सभ्यता ने दो कर दी। और फिर दोनों के संयोग से खच्चर पैदा कराकर, मानव सरीखा पशु इससे अन्य काम लेते हैं। हमारी गधी का दूध मुर्दों में भी जान डालने की शक्ति रखता है। हमारा विराट् फोक-शाक्त संसार में अपना सानी नहीं रखता।' इस पर जो कर्णफोड़ रेंकना शुरू हुआ कि मालूम पड़ा आज आसमान की कुशल नहीं। कोई गदहिया इधर से उधर भागने लगी, जिनके पीछे कई अनेक युवक गधे अपने विराट पांव में दिखाई दिये। 'नेता' ने दुलत्तियों के शिष्टाचार से उनके होश ठिकाने किये तब शान्ति हुई। स्वागताध्यक्ष ने फिर कहा कि 'हम ऐसे उपयोगी जीव हैं कि हमारी लीद तक लोग बेकार नहीं जाने देते।' अन्त में आपने सबों का स्वागत किया, त्रुटियों के लिए क्षमा माँगी और सभा-नेत्री से आसन ग्रहण करने की प्रार्थना की।

तदनन्तर तुमुल ढेंचों घोष और कर्ण फड़फड़ाहट के बीच श्रीमती ढेंचो रानी ने ग्वार के डंठल—गुलगुल गद्दर पर आसन जमाकर, अपना भाषण प्रारंभ किया।

"आज संसार में भीषण क्रान्ति की लहर फैली हुई है। हर देश में, हर वर्ग में, हर जीव में परिवर्तन के भाव जाग उठे हैं। सदियों के सताए और दबाए हुए, आज अपने उत्थान का अनुकूल अवसर समझ कर चेत रहे हैं। परन्तु अत्यन्त खेद की बात है कि हम अभी तक नीचे ही गिरे हुए हैं—हम पर अनेक

अत्याचार हो रहे हैं। हमारी सहनशीलता ही हमारी गुलामी की बेड़ी बन गई है। हमारा बोझा उठाने का गुण, हमे और भी बोझ ढोने को मजबूर कर रहा है। अपने अमोघ अस्त्र 'दुलत्ती' को हम आज आपस मे ही प्रयोग कर रहे हैं। 'दॉत काटी' शस्त्र को आज हम एक दूसरे के विरुद्ध काम मे ला रहे हैं। लाखो करोड़ो मनुष्य-रूपी-गधो के गन्दे वस्त्रो का भारी-से-भारी बोझ हमी लादते ः। हमारे मालिक को इतने से ही संतोष नहीं होता। नवाब का नाती बनकर बोझ-पर-बोझ होकर, वह भी लद बैठता है। खाने को पूरा नहीं देता। इधर-उधर चरने को भी छोड देता है तो अगले पैरो मे फन्दा डाल देता है। हमारी गधी को बच्चा हुआ तो बेरहम को क्या, एक दिन भी सौरिगृह से दम नहीं लेने लेता। दूसरे ही दिन काम मे लगा देता है। हम पर मुँगरी की भीषण मार पड़ती है। इसलिए भाइयो और भौजा-इयो! हमारी जोरदार राय है कि हमलोग संगठित होकर अपनी बस्ती अलग बसावें। अपने को पवित्र कहने वाले मानव की नगरी से हम अपवित्रो की नगरी दूर—एक दम दूर रहे। हॉ, कोई दूसरा किसी तरह का भी जीव जो हमारी ही तरह दलित-दुखी हो, मेल से रहना चाहे तो खुशी से हमारे 'नापाकिस्तान' मे रह सकता है। और हम यह भी कह देना चाहते हैं कि अब हम अपने अस्त्र-शस्त्रो को अपनी रक्षा के लिए ही सुरक्षित रखें।

अन्त में, मैं मनुष्यों को चेतावनी देता हूँ कि वे आपस में गधा कहने की आदत से बाज आवें। इससे हमारे समाज का अपमान होता है।"

गर्दभ-नेताओं के आशीर्वचनों के बाद, सभी गर्दभ-साथियों ने दुम उठाकर और कान खड़े कर, सभापति के प्रस्तावों को स्वीकार किया।

कहानी

चतुर-चतुरानन

चाचाजी खुद अपना परिचय हैं। वे १६४० मे कलकत्ता आए और रहे—बहुत कुछ देखा सुना। उनकी बहुत थोडी सी अनोखी बातें इस कहानी में दी जा रही है। शेप के लिये उनसे 'सेंसर' कराना है। वे इस समय कहा हैं—किस धुन में है, पता नहीं। राजकुमार दरबान भी कहीं गायब है। इसलिये पाठकगण चतुराननजी के सम्बन्ध में इतनी ही भेंट स्वीकार कर, सतोष करें। साप्ताहिक 'विश्वमित्र' मे इसके अनेक अश प्रकाशित हो चुके हैं।

सर सफाचट, बायीं आँख ज़रा ऊपर उठी हुई और दाहिनी नीचे झुकी हुई—मानो आकाश-पाताल दोनों की खबर रखनेवाली। चपटी नाक,—चेहरे पर पैबन्द की तरह चिपकी हुई। अरबसागर और हिन्दमहासागर की तरह दोनों पिचके गाल और नीचे लटकी हुई ठुड्डी ने कुमारी अन्तरीप का नक्शा लालाजी के चेहरे में नुमायाँ कर रखा है। माँ को मरे इतने दिन हो गये कि इन्हें याद भी नहीं, लेकिन 'माता' के प्यार की गहरी अमिट छाप सुगढ़ सूरत पर छविमान है। माथे की दर्जनों टेढ़ी-मेढ़ी लकीरें मानचित्र की नदी-रेखाओं की तरह अतीत की याद दिला रही हैं। ऊँटनुमा लम्बी गर्दन, एक ओर का कन्धा तनिक-सा झुका हुआ। बदन में मटमैले रंग की मोटी खादी की चौबन्दी, जिस पर जगह-ब-जगह मैल की तहें जमी हुईं, कमर में काले रंग की जाँघिया, पैर में कानपुरी चमरौधा,—बायाँ पैर बड़ा, दायाँ छोटा। चलते समय कमर कज खाती हुई। पीठ पर बड़ी-सी गठरी, जिसके दोनों छोर कन्धों के नीचे से निकलकर गर्दनपर गठबन्धन किये हुए। बायें कंधे से लटकता हुआ बटुआनुमा-झोला। बायें हाथ में छोटी-सी लोटी। दाहिने हाथ में भंगघोटना। बस, यह हुलिया है हमारे चाचाजी की।

जिस समय आप पटना जङ्कशन के बाहरी अहाते में, धरातल पर विषम समकोण बनाते हुए, धड़ल्ले से आ धमके, उस समय आधी रात आखरी साँस तोड़ चुकी थी। चाचाजी ने सोचा

कि, टिकट लेना तो महापाप है और किसी-न-किसी तरह कल-कत्ता पहुँचना महापुण्य। इसलिये थर्ड-क्लास के गेट की आशा छोड़, ऊँचे क्लास के गेट के पास चहलकदमी करने लगे। अध-गोरा गेटकीपर अपनी यूनिफार्म मे तिपाई पर सजग बैठा था। मगर उससे भी सजग निद्रादेवी अपनी झपकी डालकर बेचारे को बीच-बीच मे हिला-डुला देती थीं। चाचाजी इसी मौके की ताक मे थे। अहिस्ते से उसके पीछे खड़े हो गये। इस बार जैसे ही झपकी ने अपना वार किया कि चतुरानन चाचा झट से भीतर हो रहे और फुर्ती से प्लेटफार्म पर पसर गये उसी तरह कील कॉटे से सजे-बजे। औंघाये हुए कान्स्टेबल ने टोका—'अभी पंजाब मेल आयेगी; पसेंजर गाड़ी लेट है। उधर जाकर बैठो।' लालाजी ने रूपक बॉधते हुए कहा—"तुम्हारे कहने से उधर जायें ? पंजाब मेल मे ही तो जाना है।

कान्स्टेबल—'टिकट किस क्लास का है ?'

चाचाजी—'जिस क्लास का होगा, आप ही चढ़ जाऊँगा। तुम्हारी मदद नहीं चाहिये।'

इतने ही मे मेल धड-धड़ाती हुई आ लगी—खचाखच भरी हुई। उतरनेवाले कम, चढ़नेवाले अधिक। भारी रेलम-पेल मची। इण्टरक्लासी चाचाजी इण्टरक्लास के एक डब्बे की ओर लपके। वहॉ प्लेटफार्म पर पहले ही से एक मोटे थुल-थुल-अव-वयस सेठजी अपनी नयी बींदणी के साथ, असबाबों की किलेबन्दी

में डटे थे। दो नौकर, तीन कुली, एक दरबान यही सैनिक-टुकड़ी थी। सेठजी ने शायद पहले ही से चढ़ाई का उपाय कर रखा था। गाड़ी के प्लेटफार्म छूते ही स्टेशन का एक कर्मचारी झट से उस डब्बे के पास आ धमका और उतरनेवाले के सिवा चढ़नेवाले की रोक कर दी। घबराते हुए मासूम मुसाफिर सेठ और कर्मचारी को आशीर्वाद देते हुए जिधर सींग समाए उधर घुसने की चेष्टा करने लगे। मैदान साफ़ देख कर सेठ और कर्मचारी की मुस्कुराहटें टकराईं, और फिर सामान डब्बे के भीतर रखने की तैयारी विद्युतगति से होने लगी। उससे भी तीव्रगति से ध्यान लगाए हुए हमारे हीरो चतुरानन चाचा लपक कर डब्बे के भीतर हो रहे और जब तक भीतरवाले मुसाफिर—'हाँ, हाँ अरे क्या करते हो, जगह नहीं है, दूसरे डब्बे में जाओ', पूरी तरह कहने भी न पायें कि चाचाजी अपने असबाब उतार इतमिनान से बैठकर मुसकाने और क्रुद्ध आँखों से देखने लगे। मोर्चेबन्दी भङ्ग होते देख कर सेठजी ने कर्मचारी की ओर देखा, कर्मचारी ने क्रुद्ध मुद्रा से ज़रा रोब के साथ चाचाजी से पूछा—'टिकट है?'

चाचाजी—'है, बाबा है! तुम सेठजी का सामान तो भीतर चढ़ाओ, नहीं तो बेचारे की गाड़ी ही छूट जायगी।'

कर्म०—'हाँ सेठजी, सामान चढ़वाइये, जल्दी। (चाचा से) अच्छा, दिखाओ टिकट।'

चाचा—'तुम कौन होते जी टिकट देखनेवाले ? बुलाओ टिकटचेकर को। अरे हाँ, देखिये तो सही।'

कम०—तुम नहीं दिखाओगे टिकट ?'

चाचा—'कह तो दिया कि टिकट चेकर को बुलाओ, तुम्हारा क्या विश्वास ? टिकट दिखलाऊँ और तुम लेकर चलते बनो ?'

कर्मचारी—'मालूम होता है—तुम्हारे पास टिकट नहीं है। उतरो नीचे।'—इतना कहकर उसने ज्यों ही चाचाजी का हाथ पकड़ नीचे उतारना चाहा कि चाचाजी ने कसकर एक झन्नाटी हाथ कर्मचारी को लगाया और लगे खुद जोरों से रो रो कर आसमान सर पर चढ़ाने।—'बापरे, बाप, मार डाला रे बाप, खून-खून,' अब तो बेचारे कर्मचारी की सिट्टी पिट्टी गुम। चाचाजी की चिल्लाहट उसी तरह जारी रही। ऊपर नीचे बेंचों पर सोये हुए मुसाफिर जग पड़े और लालाजी से हमदर्दी दिखाते हुए कर्मचारी की लानतमलामत करने लगे। तब तक सेठजी असबाब के साथ लद चुके थे। गाड़ी की तीसरी सीटी भी बज चुकी थी। हक्का-बक्का कर्मचारी ज्यों ही उतरा, गाड़ी चल पड़ी। चाचाजी की रुलाई मुस्कराहट में बदल गई।

रातभर कोई विशेष बात न हुई। सिवा इसके कि चाचाजी के नासिका-यन्त्र की 'घर्र घर्र घो हप्' की विचित्र आवाज से यात्रियों की नींद, बीच-बीच में करवट बदलती रही।

५ घण्टे तक बेखबर सोने के बाद चाचाजी खबरदार होकर

उठ बैठे ! देखा, अन्य यात्री अभी सो ही रहे हैं। अँधेरा अच्छी तरह दूर नहीं हुआ था। चाचाजी ने सोचा कि प्रातःकाल का अपना शुभदर्शन इन्हें देना ठीक नहीं, इसलिये सब की ओर पीठ फेर कर बैठ गये, और प्रभाती रेंकने लगे। गाड़ी के 'खटर खटर-खट्' के बैतालताल के साथ बिगड़ी हुई रेडियो-आवाज की तरह चाचाजी की कर्णभेदी सानुनासिक स्वरलहरी एक अजीब समाँ उपस्थित करने लगी। लोग हड़बड़ा कर उठ बैठे, और एक दूसरे को देखने लगे। असबाब और बेंच पर आधेआध सिमटी हुई नई-नवेली दुल्हिनजी घूँघट में सगबगाईं। सेठजी भी 'राम-राम जै सीताराम' कहकर जँभाई लेते—चुटकी बजाते बेंच पर सीधे हो पड़े। मगर, हमारे गुणायक चाचाजी अलापे जा रहे थे—'मनुआ जागो भया सबेरा। माया का यह तेरा मेरा छोड़ो झूठा डेरा। कूच करन की बेरा। मनुआ जागो......' गाड़ी मधुपुर छोड़कर आसनसोल दौड़ी जा रही थी। कुछ को यहीं उतरना था। वे सामान वगैरह ठीक करने लगे। बाकियों ने टट्टी फरागत से निबटने का विचार किया। मगर सभी हैरान थे कि यह कैसा गानेवाला है—जो मुँह फेर कर गा रहा है। यारों ने रुख पलटवाने के लिये बोल छोड़ना शुरू किया। 'वाहवा, क्या कहने हैं, कमाल है, क्या कहने हैं।' मगर चाचाजी का साधनाक्रम ज्यों-का-त्यों रहा। एक बाराबंकी के मौलवी साहब जो कलकत्ता में किसी मुसलमान मिनिस्टर के लड़कों के उर्दू-ट्यूटर और कारिंदा

थे, घर से लौट रहे थे। ऊपरवाली बॅच से नीचे उतर आये और ज़रा मजाक के लहजे मे बोले—"अजी हजरत। इस बेजान लकड़ी की दीवार की तरफ तो आप अमृत टपका रहे हैं, और हम लोगों ने क्या खता की जो मुॅह फेरे हुए हैं। जरा अपने रुखे-रौशन का पेंच इधर भी घुमाइये।" चाचाजी की संगीत-समाधि भंग हो चुकी थी, उन्होने ज्योही पट-परिवर्तन किया कि आश्चर्यजनक अस्फुट ध्वनि सब के मुॅह से अनायास निकल गई। मौलवी साहब के मुॅह से बेतहाशा निकल पड़ा—"सुभान अल्लाह, क्या कयामत का हुस्न पाया है—तूने ज़ालिम। जिस वक्त अपनी कारीगरी का खज़ाना खोखला करके खुदा ने पहले-पहल तुझे गढ़ा होगा, कसम जब्राईल की, फरिशस्तो को ग़श आ गया होगा।" ठहाको से डब्बा गूॅज उठा। चाचाजी कब चूकनेवाले? फौरन ही तौलकर जवाब दिया—"जी हॉ, और जिस समय आप खराद पर चढ़ाये जा रहे थे, खुदा के कारखाने मे मनहूसियत मर्सिया पढ़ रही थी।" मौलवी साहब हाजिर-जवाबी की दाद देने से न चूके, फौरन ही उठकर बाइज्ज़त चाचाजी को अपने पास बॅच पर बैठा लिया और अपने व्यंग पर शर्माते हुए माफ़ी मॉगने लगे। चाचाजी ने कहा—"इसमे माफी क्या जरूरत? भगवान ने मुझे बनाया ही ऐसा है कि जो देखता है—हॅसता है। मुझे संतोष होता है कि कम से कम इस सूरत को देखकर लोगों का दिल तो बहल जाता है।"—इस बात पर मौलवी साहब और पानी-पानी

हो गये। औरों के मन में भी सहानुभूति जगी। तब तक आसनसोल आ गया था। उतरनेवाले उतर गये, तीन सूट-बूटधारी बंगाली सामान सहित चढ़े। चाचाजी को देखते ही एक ने कहा—'ओ माई गॉड, सुन्दर, बन्दर! दूसरा बोला—'हैव बैक आव नाटर्नेस।' तीसरे ने जरा नाक सिकोड़ कर कहा—'बट सेकेन्ड एडीशन'। चाचाजी ने उन्हें घूरते हुए—मुस्कुरा कर कहा—"एडीशन तो एक ही है, कापियाँ तीन हैं—क्यों मौलवी साहब?" उनमें से एक जरा तैश में बोला—'क्या कहा तुम?' चाचाजी ने नरमी से—मुस्कुराते हुए जवाब दिया—"मैंने कहा कि इस वेशभूषा और जिस भाषा में आप तीनों ने अभी बातें की, उनसे आपका कोई संस्मरणीय सम्बन्ध है?" एक ने झुँझलाकर कहा "हम कुछ नहीं जानता, बास चुप करो।" इतने में सेठजी को पानी की जरूरत हुई। लगे चिल्लाने 'पानी पांड़े, पानी पांड़े' चाचाजी फौरन ही झोले से गगरीनुमा लोटा निकालकर नीचे कूदे। और दो मिनट में पानी लाकर सेठजी के लोटे और गिलास में भर दिया, और भी जिन्हें जरूरत थी चाचा से माँग लिया। चाचाजी फिर अपनी गगरी भर लाये। मुखमार्जन का सामान सबके पास था नहीं। चाचाजी ने अपना बनाया हुआ नायाब मंजन सबको दिया। अब तो सभी सहयात्री चाचाजी की इस परोपकार-वृत्ति देखकर उनका आदर करने लगे। नाश्ते-पानी के समय सबने उन्हें निमंत्रित किया। किन्तु चाचाजी ने

ब्राह्मणत्व का अभिमान प्रकट करते हुए नम्रता से निवेदन किया कि बिना स्नान किये मैं कुछ खाता-पीता नहीं। इसका प्रभाव सब पर पड़ा–विशेष कर सेठजी पर। उन्होंने कहा—'अच्छा महा-राज, अगले ठहराव पर झट से स्नान कर लेना, म्हारे पास घरको बनायडो, पूरी साग है। खरीदने—वरीदने का काम नहीं।' ऐसा ही हुआ। वर्द्धवान में चाचाजी ने डटकर जलपान किया, और सेठजी की जयजयकार मनाई।

वहाँ चार मुसाफिर उतरे, और सात चढ़े। डब्बा फिर भर गया। कुछ को बेंच के नीचे बैठना पड़ा। इसके बाद जो गाड़ी खुली तो दुनिया भर के विषयों पर गप-शप और विवाद शुरू हुआ। खास कर युद्ध, सिनेमा और स्वराज्यपर ही काफ़ी बहस हुई। किसी विषय पर बात शुरू होती, विषयान्तर पर लोग बहक जाते, चाचाजी भी सभी विषयों में जमकर भाग लेने लगे।

एक सज्जन जो वर्दवान में सवार हुए थे, छिपी निगाहों से सबके चेहरे और असबाब घूर रहे थे। (जो वास्तव में आब-कारी के चर थे) उनकी दृष्टि हर तरफ़ से घूम कर चाचाजी और उनके विचित्र सामानों पर अटक जाती। उन्होंने उनसे पूछा—'कहाँ तक जायँगे?' चाचाजी—'जहाँ तक गाड़ी चली चले।' उन्होंने कहा—'ओ, तब आप कलकत्ता चल रहे हैं?' चाचाजी—'जी हाँ।'

फिर भंगघोटना की ओर संकेत करके उन्होंने पूछा—"इसके भी प्रेमी हैं आप ?"

चाचा जी—'बिना प्रेमी हुए ही प्रेम-देवता का अस्त्र लिये चलता हूँ ? क्या आप भी शौक रखते हैं ?' उन्होंने जरा झेंप दिखलाते हुए कहा—

"हाँ जरूर; मगर बाजारू और मामूली से सन्तोष नहीं होता।"

चाचा जी—'अजी मैं ऐसी चीज़ दूँ कि आप २४ से ३६ घण्टे तक भूले रहें, और इसके बाद जन्म भर याद रखें।' उन्होंने कहा—

"पास मे है ?"

चाचाजी—'क्या आप मूर्ख समझ रहे हैं मुझे ? आबकारी के कुत्तोंकी घ्राण-शक्ति बड़ी तेज होती हैं, इसलिये ज़रा सावधानी से रहता हूँ। पास मे तो चुटकी भर भी नहीं है, लेकिन घर पर चलिये। छटाक-आधपाव यों ही दे दूँ, लेकिन अधिक के लिये दाम लगेंगे।'

उन्होंने जोश से कहा—"अजी दाम की चिन्ता न कीजिये ! लेकिन बात पक्की रही।"

चाचाजी—'एकदम पक्की। मगर (धीरे से) मैं बिना टिकट हूँ। जल्दी मे ले नहीं सका।"

उन्होंने कहा—"कोई चिन्ता न कीजिये।"

हबड़ा स्टेशन पर चाचाजी स-सम्मान और स-सामान उनके

साथ उतरे। गेटकीपर को उन महाशय ने मुस्कुराकर न जाने क्या कहा और फिर दोनो वाहर हुए। उन्होने पूछा—'किधर चलियेगा ?" चाचाजी ने नरमी से उत्तर दिया—

'देखिये साहब, मेरा यहाँ घर-वर नहीं है, और न किसी से जान-पहचान ही है। पहले पहल कलकत्ता आया हूँ। गरीब ब्राह्मण हूँ। जल्दी मे विना टिकट चढ गया। और आपके द्वारा वचकर निकल आया। अब आप जैसा मुनासिब समझिये, कीजिये। मै तो आपको और आपके बाल-बच्चो को आशीर्वाद देता हूँ।'

इतना सुनते ही महाशय जी की आँखे गुस्से से लाल हो गई। पकड़ कर ले चले पुलिस मे देने। फिर न जाने क्या जी मे आया जोर से चाचाजी को ढकेल कर बोले—"बदमाश, पाजी, दूर हो यहाँ से', और तमक कर एक ओर चलते वने। चाचा जी के भी जान मे जान आई।

एक कुली ने टोका—"कहाँ जाना है ? लाइए सामान।" दूसरे कुली ने झोली पकड़ कर कहा—"लाइये, मै ले चलूँ, बड़ा बाजार ही तो जाना है ?" इतने मे कई रिक्शेवाले भी आ गये। "रिक्शा चाहिये, कहाँ जाना है," "इधर लाइये, गठरी-मुटरी"। .. चाचाजी ने हवडा के इन पंडों से यह कह कर छुटकारा पाया कि 'अरे बाबा तुम लोग कृपा करो, मैं अपनी चरणदास की जोडी पर जहाँ जाना है खुद चला जाऊँगा।' आगे बढ़ने पर चाचाजी ने

देखा कि बस और ट्राम मे इतनी रेलपेली और भयंकर भीड है कि लोगो का चढ़ना-उतरना क्या, ठीक तरह खड़े रहना भी कठिन है। भीतर जगह न मिलने से लोग पायदानो और बस के पीछे खड़े हैं—ड्राइवर और कण्ट्राक्टर परेशान हैं—पुलिसवाले हथकडे से कुरेद रहे हैं। फिर भी ठेलम-ठेल और घुस-पेठ की कला-बाजियों का दम बेतरह घोटा जा रहा है। चाचाजी घबडा कर बोल उठे—"बाप रे बाप, युद्ध ने मानो, मगर हर जगह-हर रूप मे अपने जर्म फैला रखे हैं।" एक पुलीसवाले से उन्होंने पूछा—"क्यों भाई, आदमी ज्यादा बढ गये हैं, या ये सवारियाँ ही कम हो गई हैं ?" उसने लाटसाबी ढङ्ग से उत्तर दिया—"दोनो बातें हैं, मगर तुम्हें मतलब ? चलो एक किनारे हो जाओ" चाचाजी एक ओर हो गये। अखबार बेचनेवाले चुने हुए समाचारो को, चुने हुए लहजे मे चिल्ला रहे थे। चतुराननजी आकर्षित हुए। इनकी ही तरह और भी कितने मुफलिस समाचार-जिज्ञासु हाकरो के पास पहले से ही इस ताक मे खड़े थे कि ताजा खबरो की एक-दो झलक मिल जाये। कई तो सिर्फ मुख्य पृष्ठ का हेडिङ्ग ही देख पाये थे कि हाकर की फटकार सुन कर चलते बने। कई ढीठ फटकार सुनने पर भी पन्ने उलटने लगे तो हाकर ने मजबूरन पत्र छीन कर उन्हे धता बताया। चाचाजी ने रूपक रचा। एक शांत स्वभाववाले हाकर के समीप जाकर बोले—"क्यो जी इसके सम्पादक औफिस मे ही रहते है या और

कहीं ? उनसे मिलना है। मै रिश्ते मे उनका गॉव घर का चाचा हूँ, और इस पत्र का लेखक भी। क्या आज मेरा कोई लेख छपा है—शास्त्री बुद्धिसागर के नाम से ?" हाकर एक प्रति उनके हाथ मे देकर बोला—"आप खुद देख लीजिये। सम्पादक जी के बारे मे। कुछ नहीं मालूम। आफिस का पता इसी से छपा है।" जो कुछ देखना था चाचाजी चटपट देख पत्र वापस करते हुए चलते बने।* नये पुल पर उनकी निगाह गई। चौक कर बोल उठे—'ओह, कितना विराट, कितना विचित्र, कैसा सुन्दर-असुन्दर का सम्मिश्रण। वाह, तारीफ है बनानेवाले की।" फिर पुराने पुल को देखा। उपेक्षिता नायिका की तरह,—सौतिन की सताई हुई सीता की तरह,—एक ओर उदास और मलीन वेश मे पडा हुआ है। तख्तबन्दीने गेट बन्द कर रखा है। मानो प्रियतम ने एक विदेशिनी विसालकाया-लम्बोदरी सुन्दरी के लिये सब कुछ खोल कर अपनी गृहस्थ-दलित यौवना-जीवन-संगिनी का साथ छोड, उसे उसी के जर्जर हृदय-कपाट मे बन्द कर, उसके लिये सब कुछ बन्द कर रखा है। हाय रे स्वार्थी संसार! जिसने करोड़ो-अरबो को कलेजे से लगा कर पार उतारा, दर्जनो तरह की लाखो सवारियो को अपने ऊपर से आने-जाने दिया, लाखो स्टीमरो को कलेजा चीर कर इधर-से-उधर किया, न जाने कितने ज्वार-भाटे का आलिगन किया, पचासो साल से भागीरथी को कमर मे कमरबन्द की तरह शोभायमान रहा—उसी की यह दशा ?'

---

* उस समय का चित्र है, जब नया पुल बना ही था—और पुराने पुल में घेरा लगा दिया गया था।

चाचाजी भावुकता में अधिक न बहे, क्योंकि चिलचिलाती धूप सर पर आग बरसा रही थी; और पेट में चूहे उछल-कूद रहे थे। नये पुल का आनन्द लूटते हुए पार पहुँचे। देखा, यहाँ बहुत कुछ अदल-बदल गया है। ट्राम का जंकशन, प्लेटफार्म, नये ढङ्ग से बन गये हैं। फिर देखा उसी के पास टीन का घेरा जो पूरब से दक्षिण कोण बनाता हुआ पश्चिम घूम गया है—पुराने पुल के पूर्वी गेट तक, दूसरी ही 'गंगा' बह रही है। 'सरस्वती' की लुप्त-लुप्त धारा की तरह उसकी सहस्र धाराएँ भी राजपथ में लुप्त हो रही हैं। कइयों को देखा चाचाने 'धाराओं' पर बैठकर धार बहाते हुए। उनकी लघुशंका भी जाँचिये में तीव्र शंका उपस्थित करने लगी। चाचाजी जैसे ही बैठे कि एक महातीव्र दुर्गन्ध इनकी घ्राण-शक्ति को चुनौती दे गई। फिर उन्होंने ध्यान से देखा कि यहाँ तो वैतरणी का एक फैला हुआ सूक्ष्म संस्करण अपनी सम्पूर्ण कलाओं से शोभायमान और सुगन्धायमान है।

एक कान्स्टेबिल ने डाँटकर पूछा—"पेशाब क्यों किया ?"

चाचा—'ज़रा नज़र घुमाकर देखो, यह सिर्फ पेशाब करने की ही जगह है।'

कां०—'ओ, तब चलो थाने।'

चाचा—'मगर यहाँ तो पेशाब ही खता हो गई—लघुशङ्का को ऐसी दीर्घशङ्का हुई....'

कां०—'बस छोड़ो बक-बक, चलो मेरे साथ।'

चाचा--'साथ तो जहाँ कहो, चलने को तैयार हूँ, मगर बक-बक कैसे छूट सकती है सिपाही जी।'

का०—'बड़े अजीब हो जी ? आखिर तुमने यहाँ पाखाना-पेशाब क्यो किया ?'

चाचा—छिः-छिः-छिः; यह क्या आप मुँह से निकाल रहे हैं ?

का०—'तो, क्या कर रहे थे—यहाँ ?'

चाचा—'आया तो था मै पेशाब ही करने, लेकिन।'

का०—'बड़े बातूनी हैं आप। खैर, जाइये, मगर फिर कभी—'

चाचा—'इस 'जरूरत-रफ़ा-रेफाहे आम' के पास न आइएगा, यही न ? अच्छा भाई, कभी न आऊँगा।'

चाचा एक धर्मशाले के दरवाजे पर पहुँचे। देखा, उसके फुटपाथ पर, धर्मशाले के मालिक के एक सम्बन्धी—जो धर्मशाला मे ही ठहरे थे—का छोटा लड़का टट्टी फिर रहा है। चाचा की विचित्र सूरत देखते ही, उसके देवता कूच कर गये। चिल्ला कर भीतर भागा। अन्दर से डण्डा लिये दरवान झटकता हुआ बाहर आया और चाचा का देवदुर्लभ दर्शन पाकर कृतार्थ होने के बदले कड़ककर बोला—"यहाँ ठहरने की जगह एकदम नहीं है।" उसी लहजे मे चाचा ने जवाब दिया—'और यहाँ लड़के के टट्टी फिराने की जगह है ?'

दरवान—'क्यों नहीं है? सारे कलकत्ता के फुटपाथो पर देखिये। इससे भी बढ़कर घिनौने दृश्य दिखाई देंगे। थूक—खंखार, कूड़े करकट और फलों के छिलके तो आम तौर पर बिखरे ही रहते हैं।'

चाचा—"तुम्हें हर जगह की क्या खबर?"

दर०—"पचीस साल से दरवानी करता हूँ। और कलकत्ते के दरवान घर-घर के 'दाई' होते हैं। इसके अलावा यहाँ के एक प्रसिद्ध पत्र में हर तरह की रचनाएँ छपवाया करता हूँ। इसलिये कलकतिया दाँव-पेंच भी मोटा-मोटी समझ लेने की चेष्टा किया करता हूँ।"

चाचा—"यार, तुम तो पूरे घुटे हुए निकले। अफसोस यही है कि मेरा-तुम्हारा साथ न रह सकेगा। खैर, थोड़ी देर यह सुस्ता लने दो, क्योंकि सारी रात रेलकी परेशानी में वीती, और स्टेशन से यहाँ तक पैदल ही आ रहा हूँ-तिस पर यह बोझा और ऊपर से रवि देवता की अग्नि-वर्षा। ज़रा ठंढई-वंढई छनेगी, फिर चित्त को शान्ति प्राप्त होगी।"

दरवान—'ठंढई? यानी बूटी-भाँग?'

चाचा—"सोमरस कहो, सोमरस। जानते हो, देवताओं ने इसके लिये असुरो से २८ हजार वर्ष तक युद्ध किया, तब यह दिव्य बूटी हाथ आई थी।'

दरवान—'मगर कलकत्ते में तो १५ दिनो से इसकी दूकानें बंद हैं, फिर आपके पास?"

चाचा—'चतुरानन चाचा के चमत्कार को तुमने अभी देखा ही क्या है। अच्छा, क्या तुम भी भंगी हो ?'

दरवान—"अरे राम, राम, राम !"

चाचा—"मतलब यह कि भंग भवानी के भक्त हो ?"

दरवान—"आदतन छाननेवाला हूँ। नहीं मिलती तो सौंफ इत्यादि के साथ तांबे का पैसा घिसकर या गॉंजे मे से बीज वगैरह छॉंट कर, उसे ही पीस कर पी लेता हूँ।"

चाचा—'मत घबराओ' मै कहीं भी रहूँगा, तुम्हारे लिये नित्य सन्ध्या समय एक चकाचक ग्लास पहुँचा जाया करूँगा।"

दरवान—'क्या करूँ, जगह तो नहीं है-फिर भी आपसे ऐसा प्रेम हो गया है कि कुछ न कुछ प्रबन्ध करना ही पड़ेगा।'

कहना नहीं होगा कि चाचाजी को छोटी सी—मजे की कोठरी मिल गयी।

गहरी छानने के बाद स्नानादि से निबटने पर चाचाजी के सामने वही समस्या आ उपस्थित हुई, जिसका समाधान आज तक न हुआ—और न कभी होगा। चाचाजी के ही शब्दों में वह सनातन है—अनादि है—अनिवार्य्य है—व्यक्तिगत है—सामाजिक है—सामूहिक है—धार्मिक है—राजनीतिक है—वही जीवन है—वही सृष्टि है—अर्थात् पेट की समस्या। उन्होने दरवानजी से कहा भूमिका बाधकर—'चूहे बड़े जबरदस्त है ?'

दरवान—'अजी, कुछ न पूछिये, बिल्ली-बिल्ले की हिम्मत नहीं इन्हे छेड़ने की, यहॉं के चूहे नामी होते हैं।'

चाचा—'और उछल कूद रहे हैं—किस तरह ? मानो घुड़दौड़ मचा रहे हों।'

दरवान—'कहाँ हैं ? ऐसा न हो कि सामान नुकसान कर दें। बड़ी कठिनाइयों से खदेड़े रहता हूँ। किधर है ? मुझे तो दिखलाई नहीं पड़ते।'

चाचा—'ये दिखलाई नहीं पड़ने के' अनुभव करने के हैं।'

दरवान—'क्या कह रहे हैं आप ?'

चाच—'ठीक कह रहा हूँ। भइया, वे उछल रहे हैं—हुरदंग मचा रहे हैं और बेतरह मचा रहे हैं।'

दरवान—'आखिर कहाँ? (हँसकर) क्या रंग मे आ गये गुरु।'

चाचा—'तभी तो रंग बदरंग हो रहा है। सच कहता हूँ—चूहे कूद रहे हैं—बेतरह कूद रहे हैं।'

दरवान—'ओह, आप तो बुझौवल बुझा रहे हैं। साफ-साफ कहिये न ?'

चाचा—'तुम कहते हो, मै लेख-कविताएँ रचा करता हूँ—महावरा भी नहीं जानते कि 'चूहे कहाँ कूदा करते हैं ?'

दरवान—'कहाँ कूदा करते हैं ? (कुछ सोचकर) अपनी माँदा के पास-बिलमे-अन्न के बोरों पर।'

चाचा—'बस रह गये तुम वही···। अरे बच्चू, चूहे कदा करते हैं—खाली पेट मे, समझे। यही महावरा है।'

दरवान—'तो गलत है। चूहे को कूदना चाहिये वहाँ, जहाँ अन्न का भंडार भरा है। ग़रीबों के यहाँ-खाली पेट वालों के यहाँ, इनके कूदने का महावरा बदल देना चाहिये।'

चाचा—'अच्छा भईया, इस विषय पर फिर हमलोग विचार करेंगे। अभी तो मूल समस्या-समाधान का उपाय होना चाहिये। मारे भूख के अँतड़ियाँ अन्तर्वेदना के टूटे तार पर करुण विहाग अलाप रही हैं।'

दरवान—'वाह, क्या छीला है छायावाद को तुमने गुरु! काली किरिया, चित लहालोट हो गया। अच्छा, ठहरिये। अभी आया।' इतना कहकर दरवान अपनी कोठरी मे जाकर, क़रीब सेर भर मिठाइयो का चूरा—जिसमे कुछ लड्डू, सूखी बूँदिया, सूखी जलेबियाँ और सुहाली थे—ले आया, और चाचा के सामने रखकर बोला 'हमारे सेठजी के यहाँ विवाह था, वहीं से यह सब आया है। अभी जलपान कीजिये, फिर रसोई—।'

चाचा—'थोड़ा तुम भी लो, अकेले आनन्द नही आयेगा।'

दरवान—'मै जलपान करके उठा ही था कि आपका शुभागमन हुआ। आप खाइए।'

फिर क्या था। चाचा अप्रतिद्वन्दी रूप से मैदान मारने लगे। उनके मुखयन्त्र की दंत-चक्की अविराम गति से चक्कर लगाने लगी। बीच-बीच मे बातचीत भी होती जाती थी। चाचा ने पूछा—'तुम्हारा नाम ?'

दरवान ने उत्तर दिया—'राजकुमार, और आपका ?'

चाचा—'चतुरानन चौबे ।'

दरवान—'मगर मैं तो चाचा ही कहूँगा ।'

चाचा—'ठीक है । बड़ा आनन्द रहेगा-जब मिल बैठेंगे दिवाने दो ।'

राजकुमार—'अच्छा चाचा, तुम यहाँ क्या करने आये ? कोई कारोबार करोगे या—।'

चाचा—'मैं यहाँ क्यों आया ! यह तो इस प्रांत के आकर्षण से पूछो, ब्रिटिश साम्राज्य की दूसरी महानगरी के जागते-जादू से पूछो, जिसके चुंबक से खिचकर हमारे पुरुखा यहाँ भेंड़ बन जाते रहे हैं । आखिर सारा कलकत्ता यहाँ क्यों बसा हुआ है ? तुम्हीं किसलिये आये—बताओ ! बस, जो सबका उद्देश्य है, वही मेरा भी है ।'

राजकुमार—'मगर उद्देश्य को कार्यरूप मे परिणत कैसे कीजियेगा ?'

चाचा—'पहले तो दर्शनीय-स्थानो का दर्शन करूँगा । इसके बाद समाचारपत्रवालो से मिलूँगा, सार्वजनिक संस्थावालो से भेट करूँगा । सिनेमावालों को भीतर से देखूँगा । काउंसिल एसेम्बली-कारपोरेशन के सदस्यो की निकट से जानकारी प्राप्त करूँगा । हर तरह की सभा, परिषद, सुसाइटी, गोष्ठी, एसोसियेशन, समाज, दल, समिति, सम्मेलन आदि मे भाग लूँगा । इसके अतिरिक्त……

राजकुमार—'ठीक है, मालूम हो गया। किन्तु सबसे प्रथम आपको राशनिंग का प्रबन्ध करना होगा। कल सवेरे चलेंगे।'

चाचा—'अच्छी बात है।'

[२]

दूसरे दिन, राजकुमार दरबान के साथ चाचा वार्ड के रेशनिंग आफिस पहुँचे। काफी लम्बा-चौड़ा दफ्तर था। डिपार्टमेण्टल तख्तियां टँगी थीं। उन्हीं के नीचे बाबू लोग कुर्सी-टेबल पर डटे काम में कम, लेकिन बातोंमें ज्यादा मशगूल थे। प्रार्थियो की काफी भीड थी। कोई रेशन कार्ड के लिये दर्खास्त देने आया था, कोई लेने आया था, कोई केवल पूछताछ करने ही आया था। प्रार्थियो की गिड़गिडाहट, बिनती, उज्र, जानने की इच्छा और बाबुओं की हुकूमत, हुज्जत, अॅकड, व्यस्तता-प्रदर्शन आदि अध्ययनीय और मनोरञ्जक थे। प्रायः चार मिनिट तक चाचा घूर-घूरकर स्थिति का अध्ययन करते रहे। फिर एकाएक बहुत ही गम्भीर आवाज़ मे, 'चन्द्रकान्ता' के ऐयारो की परिचित बोली मे बोल उठे,—"जय माया की"। सभी चौककर इनकी ओर देखने लगे। विचित्र सूरत और विचित्र वेश देखकर कई विद्रूप मे विहँस उठे। एक दो के मुख से व्यंगात्मक अस्फुट शब्द भी निकले। अधिकाशो को कौतूहल हुआ। एक बाबूनुमा वर्दीधारी पास आकर बोला—'आपनी की चान ?' राजकुमार ने जवाब दिया—'हम लोगो को रेशन कार्ड चाहिये।' अङ्गरेजी सिनेमा-एक्टर के अप्रभंपी पोज मे मुट्ठी बाँध, अगूठे से एक ओर इशारा करते हुए-वर्दीधारी ने कहा

'उदिके जान।' चाचा भतीजे वहाँ पहुँचे। वहाँ एक मलीन वस्त्रधारी-छोकरानुमा बाबू कुर्सी पर अकड़ा बैठा था। दीवार में तख्ती टगी थी 'इन्क्वायरी'। वहाँ प्रायः डेढ़ मिनट तक उसके सामने खड़े रहे, किन्तु उसने कुछ नहीं पूछा। चाचा ने कहा—'रेशनकार्ड चाहिये।' वह अनसुनी करके दो नवागन्तुकों से न जाने क्या फुसफुस कर, उन्हें दो छपे फार्म देकर बीड़ी सुलगाने लगा। चाचा ने फिर कहा—'अजी सुनते हो नवाब साहब, मुझे रेशन कार्ड चाहिये।' उसने बीड़ी का धुआँ ऊपर फेंकते हुए कहा—'ईहां नेई, उ खाने रेशन कार्ड मिलता, उदिक जावो।' चाचा की त्यौरी चढ़ी, बोले—'अभी तो वह बतला गया कि यहाँ मिलता है और तुम बोलते हो वहाँ। बात क्या है?' उसने धीरे से कहा 'हाम ठीक बोलता, ईहाँ रेशन कार्ड नेई मिलता। ईहा सिरीफ उसका दरखास्त करने का फार्म मिलता।' राजकुमार ने कहा 'अरे हाँ हाँ, पहले तो वही चाहिये बाबू! दीजिये न।' वह बोला—'अभी फिनीस हो गया।' चाचा गुर्रा उठे 'तब कब मिलेगा? किसके पास मिलेगा?' 'हाम नेई बोलने सेकता अभी।' कहता हुआ वह कुर्सी से उठ खड़ा हुआ। चाचा आपे से बाहर हो गये। टेबल पर जोर से हाथ पटककर गरज उठे। दफ्तर में हलचल मच गयी। कुछ प्रार्थी बोल उठे 'हाँ साहब, इनकी यही आदत है। किसी को सीधा जवाब नहीं देते।' दफ्तर के बड़े बाबू ने डाँट कर पूछा—'की व्यापार आछे रे धीरेन?' धीरेन—'देखूना सर' इ

भद्रलोक अकारने आमाके .।' चाचा बीच मे ही बात काटकर बोले...'मै दरखास्त का फार्म माँगता हूँ तो ये कहते हैं—खत्म हो गया। पूछता हूँ कब मिलेगा तो कहते हैं—अभी हम बतला नहीं सकते।' बड़े बाबू इन्क्वायरी बाबू पर बरस पड़े—'इफ फार्मस् आर नाट विथ यू, देन यू उड हैव काल्ड फौर इट।'—इतना कह कर पियन के हाथो उन्होने फार्म का वण्डल भेजवा दिया। चाचा ने चार माँग लिये—देखा तो फार्म अङ्गरेजी मे छपे है। राजकुमार से बोले—'हिन्दी मे भी क्यों नहीं छपवाया गया? चलो, बड़े बाबू के पास।' राजकुमार ने रोका—'चाचा, इस बारे मे बखेड़ा करना बेकार है। हमलोग साधारण व्यक्ति है। हिन्दी के हिमायती बड़े लोग—हिन्दी सस्थाएँ, हिन्दी-पत्र इस बारे मे चूँ तक नहीं करते, तो हम लोग क्या कर सकेंगे।' इतने मे एक दूसरा वर्दीधारी पहुँचा और बोला—'फार्म भरवाना हो तो उस बाबूसे लिखवा लीजिये।' दोनो उस जगह पहुँचे। देखा—यजमानो की भीड़ है और फी फार्म दो आने लिखाई वसूल की जा रही है। चाचा बोले—'चार फार्म हैं।' वह बिना आँख उठाये ही बोला—'आठ आना देने होगे।' चचा फिर गर्म हुए, लपके बड़े बाबू के पास, बोले—'अजी साहब वह फी फार्म दो आने लिखाइ माँगता है। गरीब लोग—भूखो मरनेवाले कहाँ से दे सकते हैं?' बाबू भी तमककर बोले—'वो लिखनेवाला भी गरीब हाय—हमारा नौकर नई है—सरकार का नई है।

आपका भी नई है, फिर किस माफिक खाली पेट लिखेगा?' चाचा ने उसी लहजे में जवाब दिया—'तो गरीब-गरीब को खाने लगे—यही इन्तज़ाम है आपका?' बाबू भड़क उठे-'जाओ बाबा, हमारा माथा मत खराब करो। हम लोग भी आदमी हैं।' चाचा धीरे से बोले 'हाँ, इसमें शक की गुञ्जाइश तो नहीं थी; लेकिन—' 'लेकिन-वेकिन कुछ नई—तुम फार्म लिखवा कर ले आओ। और हाम कुछ बात नेई करने चाहता।' रंग-बदरंग होते देख राज-कुमार चाचा का हाथ पकड़कर बाहर ले आया। दूसरा वर्दीधारी फिर पहुँचा। वह ए० आर० पी० का कर्मचारी था। बोला—'देखिये, काम सहूलियत से बनता है, झमेला करने से कुछ फ़ायदा नहीं। किसी जान पहचानवाले से लिखा लाइये। यह तो मेहन-ताना लेगा ही।' चाचा ने उससे पूछा—'अच्छा दोस्त, यह तो बताओ—हर एक को कितना अन्न मिलता है?' 'पाव भर आटा या पाव भर चावल' वह बोला—

चाचा—'मगर कितने ही ऐसे हैं जो तीन पाव एक दफ़ा खाते हैं—सो?'

वह—'कुछ भी हो, हर एक को पाव भर ही मिलेगा।'

चाचा—'तीन पाव खानेवाले को भी, और आध पाव न पचा सकनेवाले को भी पाव भर? अच्छा, देखो भाई, हम भी तीन पाव खानेवालो में से हैं। क्या कोई ऐसा उपाय नहीं है, जिससे कि'—

वह—'अजी कलकत्ते मे किस बात का उपाय नहीं है ? ठंढे मन से, हिम्मत से, चालाकी से, मिल-जुल कर, क्या नही किया जा सकता ?'

चाचा—'तो बोलो क्या करना होगा ?'

वह—'मगर आप कुछ अजीब से हैं, मै उपाय बताऊँ और आप...।'

चाचा—'नहीं-नहीं, अब कुछ नहीं करूँगा। जैसा आप कहेंगे, वैसा ही होगा।'

वह—'तो सुनिए, आपको ६ रेशनकार्ड लेने होंगे, जिनसे तीन तो मेहनताने मे हम लोग ले लेंगे और तीन से आपका काम चल जायगा।'

चाचा—'यह कैसे ?'

वह—'ऐसे कि ६ वार्डो से इसका इन्तज़ाम करना होगा, और नाम मे थोड़ा हेर-फेर कर दीजियेगा। लेकिन बाप का नाम बदलना होगा।'

राजकुमार—'बाप का नाम बदलना तो...'

वह—'अरे, फायदे की गुंजाइश हो तो लोग बाप तक को बदल देते हैं, और आपको तो सिर्फ नाम बदलना है।'

चाचा—'अच्छा, मंजूर। विष्णु के सहस्र-नाम की तरह हमें अपने बाप के भी कई नाम रखने मे आपत्ति नहीं है। मगर छः हो रेशनकार्ड के माल के पैसे हम नही देंगे।'

वह—'यह भी कहने की बात है। आप सिर्फ अपने तीनके ही दाम देते रहेंगे। लेकिन पहले-पहल आपको छहों वार्डों में जाना होगा। फिर कार्ड मिल जाने पर तीन दिन—तीन जगह रेशन लाने तो जाना ही होगा।'

चाचा—'लेकिन भाई, कुछ बखेड़ा तो नहीं होगा ?'

वह—'अजी आप भी कैसी बातें करते हैं ?' सुनिये, करीब ५० लाख रेशनकार्ड बांटे जा चुके हैं। और क्या आप यह समझते हैं कि कार्ड एक-एक को मिला है ? २०-२० कार्ड अकेले लेनेवालों को मैं जानता हूं। और भी सुनिये। उनमें कई लाख आदमी अपने-अपने कार्ड छोड़कर या बेचकर देश चले गये, और उनके कार्डों का इस्तेमाल होता है। खैर, तो बात पक्की रही न ?'

चाचा—'हाँ साहब पक्की—एकदम पक्की।'

आठ दिन के अन्दर ही सब इन्तजाम हो गया।

[३]

धीरे-धीरे चाचाजी की चर्चा चारो ओर फैलने लगी। राजकुमार चलता-फिरता और जबानी विज्ञापन था ही। भिन्न-भिन्न स्वार्थों के स्त्री-पुरुषों का आना-जाना आरम्भ हुआ। चाचा हरफन मौला ठहरे। किसी को असाध्य रोग की दवा बतला रहे हैं, किसी को भूत, वर्तमान, भविष्य समझा रहे हैं। किसी के लिये झाड़-फूँक अथवा टोना-टोटका की व्यवस्था कर रहे है। कभी सत्यनारायण भगवान की, कभी एकादशी-माहात्म्य की, तो कभी शनीश्चरदेव की कथा कह रहे हैं, कभी कीर्तन का आयोजन कर

रहे हैं। इन कार्यों के लिये चाचा बाहर भी जाने लगे। सबसे बढ़कर उनका बनाया हुआ 'वज्रदंती' नामक दंतमंजन खूब चलने लगा। इन सबसे काफी आय भी होने लगी। इस तरह चतरानन चाचा चकल्लस के साथ चौतरफी चाँदी चीरने लगे।

रात मे अकसर राजकुमार के मित्रो की मण्डली—जिसमे दूसरे-दूसरे दरवान एवं उनके मित्र, प्रेसो के निम्न कर्मचारी तथा उन्हीं की श्रेणी के अन्य लोग होते—जुटती। गपशप, ज्ञानचर्चा, विनोद, गायन तथा कविता-पाठ का रंग जमता। कहना नहीं होगा कि चाचा सभापति और राजकुमार मन्त्री की तरह मालूम होते। कभी-कभी लोग चाचा से प्रश्न पूछते, तो वे अपने अलबेले ढंग से बड़ा ही मनोरंजक उत्तर देते। एक दिन एक ने पूछा-'अच्छा चाचा जी यह सब मानते हैं कि युद्ध संसार के सारे अनर्थों की जड़ है, फिर भी सब मिलकर उसको रोकने का उपाय क्यो नहीं करते ?'—

चाचा ने उत्तर दिया—'अरे भइया' युद्ध तो सृष्टि के आदि-काल से ही चला आता है। बल्कि ऐसा समझो कि अगर क्षिति, जल, पावक, गगन और समीर—यानी पाँचों तत्वो मे संघर्ष न होता तो किसके बाप की शक्ति थी कि सृष्टि रचना करता ? और सुनो, अगर देवताओ तथा दानवो मे द्वन्द्व न होते रहते तो भगवान के अवतारो का पता लापता—हाउस मे भी न लगता। भला कोई बताये तो कि अगर 'लक्ष्मी' न होती तो उसके वाहनो के

बिना दुनिया कैसे चलती ? 'धन्वन्तरी' न टपके होते तो सारा संसार ही अस्पताल बन गया होता। 'ऐरावत' न मिलता तो इन्द्र किस पर चढ़ कर असुरो से लड़ते ? 'अमृत' प्रकट न होता तो देवता अमर कैसे होते ? 'सुरा' न मिलती तो देव-दानव की दुरंगी दुनिया का दिवाला ही निकल गया होता। 'विष' न प्राप्त होता तो हमारे शंकरजी नीलकंठ कैसे कहलाते ? मनुष्यो मे हत्याओ एवं आत्महत्याओ की हलचल से कचहरियों के अधम-ऊधम-ऊसर खेत में हल कैसे चलता ? 'कौस्तुभ रत्न' के बिना विष्णु भगवान शोभा हीन ही रहते। 'कल्पवृक्ष' न हाथ लगता तो देवलोक मुफलिस महल्ला करार दे दिया जाता। मतलब यह कि सुरासुर युद्ध का ही परिणाम था कि समुद्र-मंथन के द्वारा इस प्रकार के उपयोगी चौदह रत्न निकले। और भाई, अगर राम-रावण मे लंका-काड न मचा होता तो बाबा तुलसीदास तथा रामायण की प्राप्ति कहाँ से होती ? यदि कौरव-पाण्डव का मशहूर महाभारत न मचा होता तो वेदव्यास, श्रीमद्भागवत और गीता के बिना हिन्दू जाति की क्या गति होती ? भीम की भीषणता, अर्जुन की बाणविद्या, द्रोण का रणकौशल, भीष्म की महत्ता, विक्रमादित्य का विक्रम, खूनी अशोक का सशोक परिवर्तन, चन्द्रगुप्त की रणचातुरी, पृथ्वीराज का पराक्रम, आल्हा-ऊदल की वीरता, नेपोलियन के नर-संहार और हार का नाटक, अमेरिका की स्वाधीनता, फ्रांस की क्रान्ति, दकियानूसी रूस की कायापलट, ब्रिटेन का प्रजातन्त्र, चीन

की पिनकटूट आदि-आदि हम युद्ध के बिना कैसे जानते ? मै कहता हूँ कि अगर विश्व-लाड़िली लड़ाई की कृपा न होती तो हस्तिनापुर की हसरत भरी हस्ती पर दिल्ली की दीवार कैसी खडी होती ? संयोगिता के संयोग से पृथ्वीराज और जयचन्द न लड़े होते तो मध्ययुग के भारत का इतिहास पढ़ने के नाम पर लोग कोपर चाटते। शिवाजी, औरंगजेब, अकबर, प्रताप, तेगबहादुर आदि की कीर्ति-अकीर्ति तथा चित्तौर के जौहर-व्रत का बीज वपन कैसे होता यदि युद्धदेव दया न दर्शाते ? यदि वीरता की जननी युद्धकाली अपनी कराल करामात न दिखाती तो हिन्दी के आदि कवि 'चन्द' और वीररस के रसिया 'भूषण' कहाँ मिलते ? यही देखो न, अगर आपस मे ही लड़ाई-भिड़ाई न हुई होती तो हमारे स्वदेश को सुफेद शासन का सौभाग्य कैसे प्राप्त होता ? और कितने ही क्रान्तिकारी एवं सुविचारी देशी नेताओ के नेतृत्व-नृत्य से हमारा नन्हा नसीब निहाल कैसे होता ? यह वर्तमान युद्ध न छिड़ता तो चर्चिल, हिटलर, मुसोलिनी, स्टालिन, रूजवेल्ट और तोजो तथा उनके देशो का ज्ञान हम लोगो को किस प्रकार होता ? सच तो यह है भाइयो कि संसार के समस्त महापुरुष कृष्ण, ईसा, बुद्ध, मुहम्मद, महावीर, जरदोस्त आदि और उनके धर्म तथा ग्रन्थ युद्ध से ही जन्मे और इन्हीं के लिये संसार मे अधिक युद्ध हुए। जिस प्रकार रोगग्रस्त शरीर के लिये जुलाब जरूरी है, उसी प्रकार सदियो की सडी हुई सृष्टि के सुधार के लिये युद्ध का जमालगोटा भी जरूरी है।'

एक दूसरे ने पूछा—'अच्छा चाचाजी, युद्ध मे जीत किसकी होगी ?'

चाचा—'जिसके पक्ष में भगवान, सत्य और धर्म होंगे।'

वह—'तो, ये किसके पक्ष मे होंगे ?'

चाचा—'जिसकी जीत होगी।'

वह—'यह कैसे ?'

चाचा—'कैसे क्या ? यह तो सदा से होता चला आया है कि विजयी ही धर्मात्मा, सत्यवादी और भगवद्भक्त होते हैं। कवि, साहित्यकार, सन्त उन्ही के गुण गाते हैं और संसार को उन्हीं के आदर्श पर चलने का उपदेश देते हैं।'

दूसरा—'यह तो कहिये चाचा, युद्ध कब तक समाप्त होगा ?'

चाचा—(हँसकर) 'जब सृष्टि समाप्त होगी।'

दूसरा—'क्या मतलब ?'

चाचा—'अरे भाई, युद्ध कभी समाप्त नहीं होता; हाँ, इतना अवश्य होता है कि एक युद्ध दूसरे युद्ध का गर्भ धारण कर लेता है। और जब तक 'सन्तान' पैदा न होती, तब तक 'विश्राम' अर्थात् प्रसूतिकाल शान्ति-युग कहा जाता है। इसमे एक साल का भी समय लग सकता है, दस साल, पच्चीस साल या सौ साल का भी अन्तर हो सकता है।'

तीसरा—'चाचा, आपके ये विचार बड़े ही विचित्र हैं। इन पर एक पुस्तक लिखिये न।'

चाचा—'लिख तो रहा हूँ. पर छपाऊँगा नहीं।'

तीसरा—'क्यों ?'

चाचा—'कहावत है गँवारो को सब कुछ दे, लेकिन अकल न दे, आर्यो ने शूद्रो के लिए वेदो का पठन-पाठन इसीलिये बन्द रखा था।'

राजकुमार—'तब क्या चाचा, आप चाहते हैं कि संसार मे गँवारपन रहे ? वे शिक्षित न हो ? आत्मज्ञान प्राप्त न करें ?'

चाचा—'अरे बाप रे, मूर्खों को आत्मज्ञान प्राप्त हुआ और वे समझने लगे कि संसार असत्य है, असार है, यहाँ दुख ही दुख है, तो बस आत्महत्या कर लेंगे। फिर संसार चलेगा कैसे ?'

राजकुमार—'किन्तु शिक्षा के लिये जो इतने उद्योग हो रहे हैं, इतनी युनिवर्सिटियाँ, कालेज, स्कूल, विद्यालय—'

चाचा—'ये सब मूर्खाभिमान-उत्पत्ति-केन्द्र हैं। इनमे किसी को सत्य-ज्ञान प्राप्त नहीं होता।'

एक खद्दरधारी कम्पोजीटर—'अच्छा चतुराननजी, भारत को स्वराज्य कब प्राप्त होगा ?'

चाचा—'जब इसके निवासी मुक्ति के सारे ढकोसलो का परित्याग कर देंगे।'

खद्दरधारी कम्पोजिटर—'जरा साफ समझाकर कहिये।

चाचा—'साफ तो यह है भाई कि इस काल्पनिक मुक्ति ने ही—भवसागर से छुटकारा पाने की खयाली बात ने—ही यहाँ वालों

को ग़ुलामी सिखा दी है। पूजा-पाठ, व्रत-त्यौहार, मन्दिर, यज्ञ, होम, जप, ईश्वर धर्म ये सब क्या हैं? मुक्ति पाने के साधन! कहा गया है कि इन पर भरोसा करके मनुष्य संसार-सागर से छुटकारा पाता है। इस प्रकार, जो दूसरे पर—दूसरे की शक्ति पर, भरोसा करना सीखते आये हैं, वे अपने पर कैसे भरोसा करेंगे? और जब तक अपने पर भरोसा नहीं करेंगे, स्वाव-लम्बी—स्वराज्य के योग्य कैसे हो सकते हैं?'

राजकुमार—'तब योगसाधना क्या है? इतने योगी जो योगसाधना द्वारा मुक्ति की कामना करते हैं, सो?'

चाचा—'योगसाधना तो एक प्रकार के व्यायाम का आध्या-त्मिक नामकरण मात्र है। और मुक्तिकामना करनेवाले योगी तो स्कूली-परिश्रम से देह चुरानेवाले विद्यार्थी की तरह हैं—जो मानव धर्म—सासारिक-कर्तव्य में आलस करके, आराम के लिये कहीं भागना चाहते है। नहीं तो जैसा कि मैंने पहले कहा है—वे आत्महत्या करनेवाले मूर्ख आत्म-ज्ञानी हैं।'

राजकुमार—'तो सच्चा योगी कौन है?'

चाचा—'ड्राइवर!'

राजकुमार (आश्चर्य से) 'ड्राइवर? किसका?'

चाचा—'मोटर का, बस का, लारी का, रेल का, जहाज का, टैंक का, हवाई जहाज का। जानते हो, इन बेचारे सच्चे साधको के हाथ में कितनों की जानें रहती हैं। तनिक चूके और गये! मगर ये

कितने सावधान रहते हैं। अतएव, इस युग मे यही सच्चे अर्थ मे योगी है।'

(५)

एक दिन चाचा स्टूडियो देखने चले। इन दिनो (सन् ४०-४१ मे) स्थानीय अधिकाश स्टूडियोज मे वम बोल रहा था। हरीसन रोड-चित्तपुर रोड के चौराहे पर ट्राम की प्रतीक्षा मे देर तक खड़े रहे। जो आती, खचाखच भरी हुई। रुकती भी तो ५ उतरते १० चढते, १० धक्कमधुक्की करके रह जाते। कुछ फुर्तीले वहादुर ऐसे भी होते, जो लपक कर पॉवदान पर ही लटक जाते। चाचा ने कई बार चढ़ने की चेष्टा की; पर सफल न हो सके। कई धक्के खाने पडे, एक-दो बार तो गिरते-गिरते वचे। अन्त मे उन्होने सोचा सहूलियत, सुविधा और सज्जनता की आशा छोड़, उसी टेकनिक से काम लेना चाहिये। बस, इस बार जैसे ही ट्राम ने फुटपाथ का आलिगन किया कि फुर्तीलो के फुर्ती दिखलाने के पहले ही, चढ़नेवालो की भीड़ चीरते और उतरनेवालो को ठेलते, चाचा झट ट्राम मे चढ़ बैठे। दो-तीन के पैर दब गये और कुछ को धक्के खाने पड़े। उन लोगो ने इन्हे बुरा-भलाकहना शुरू किया। पर, चाचा अनसुनी कर गये! ट्राम चल पड़ी। कोलूटोला मोड़ पर जैसे ही लेडी सीट की एक जगह खाली हुई कि आप चट आसीन हो गये। दूसरी सीट मे एक एंग्लो इण्डियन वुड्ढी वैठी थी। तमककर बोल उठी—"ओ, नो-नो; जनाना सीट हाय,

उठ जाव।" क्या करते, चाचा खड़े हो गये।

धर्मतल्ला में ट्राम बदलते समय चाचा ने देखा कि, यहाँ तो और भी मुश्किल है। चढ़ना और उतरना दोनो, शत्रु व्यूह में घुसने के दाँव-पेँच से कम नहीं है। दो मे असफल होने के बाद, तीसरी में चाचा चढ़ ही तो गये। मगर हरीसन-चितपुर-मोड़ से कहीं ज्यादा परेशानी उठानी पड़ी। पसीने से तर-बतर हो गये। भीड़ इतनी थी कि भीतर लोगों का बदन से बदन छिल रहा था और बाहर पाँवदान पर भी यारो में धक्कम-धुक्की मच रही थी। कुछ दूर बढ़ने पर थके हुए चाचा बैठने की तरकीब सोचने लगे। नजर पड़ गयी लेडी सीट पर। देखा, दो मर्द महाशय विराजमान हैं। और जब ट्राम-स्टेशन आता तो दोनो देख लेते कि कोई सीट की अधिकारिणी तो नहीं आ रही है। चाचा धीरे-धीरे उस-नीति का सहारा लेकर उनके पास जा पहुँचे। थियेटर रोड की मोड़ पर ट्राम ज्यो ही रुककर चलने लगी कि चाचा ने कहा "लेडी...लेडी सीट।" वे दोनो बेचारे हड़बड़ा कर उठ खड़े हुए और चाचा ने गद्दी दखल कर ली। दोनो दाँत पीसकर चाचा को कुछ सुनाना ही चाहते थे कि उनमे से एक ने साथी का साथ छोड़ कर, अवसरवादियों की तरह, चाचा का साथ दे दिया—अर्थात् चाचा के बगलवाली खाली जगह से बैठ गया। चाचा मुस्करा उठे।

टालीगंज डिपो मे ट्राम से उतरकर चाचा ने एक इङ्गलिश वेप-

धारी 'मोशाय' से पूछा—"फिल्म कम्पनी का स्टुडियो किधर है ?" वह बोला—"आप किस कोम्पानी मे जायेगा ?"

चाचा—"किसीमें भी ।"

वह—"ओ, तब तो इधर भी जाने सकता, उधर भी जाने सकता है"—कह कर चलता बना। चाचा भी जिधर उसने बताया था, एक तरफ चल पड़े। कुछ दूर आगे एक कम चौड़ी और ज्यादा लम्बी चहारदीवारी से घिरे भूतहे मकान के समान एक बड़े भारी घर के सामने जा खड़े हुए। मालूम हुआ जैसे किसी बिगडी जमींदारी का हथियार हो। वैसा ही लम्बा-चौड़ा-ऊँचा। मरम्मततलब उसके फाटक का सहारा लेकर—एक टूटी तिपाई पर एक मरियल नेपाली बैठा कभी ऊँघता कभी जम्हुआई लेता था। फाटक के ऊपर साइनबोर्ड लटक रहा है—".. फिल्म कम्पनी", चाचा लापरवाही से जैसे ही फाटक के अन्दर घुसे कि पहरेदार बोला—"जगह नहीं है।"

चाचा—"वाह, इतनी जगह है, इतनी बड़ी आलीशान इमारत इस बुढ़ापे मे भी जवानी की याद मे अभी तक जिन्दा है, फिर भी.. ।" इतने मे ही, सामने के नीचेवाले कमरे से आवाज आयी 'आने दो।' चाचा वहाँ पहुँचे। देखा, शायद ऑफिस है। कुर्सी, टेबल, रेक्स, आलमारी, तिजोरी, कागज-पत्र आदि सभी चीजे मौजूद हैं। टेलीफोन भी है। दो अर्ध-वयस्क सज्जन दो कुरसियो पर विराजमान है। मगर, चाचा को अनुभव हुआ कि 'कह रहा

है आसमाँ, यह सब समाँ कुछ भी नहीं।' चाचा एक खाली कुरसीपर ज्यों ही बैठने लगे कि गिरते-गिरते बचे। वे लोग भी 'हो' 'हो' करने लगे। चाचा ने देखा कि यह तीन टाँग की कुरसी दीवार के सहारे केवल ऑफिस का डिसिपलिन पालन कर रही है बेचारी। खड़े ही खड़े पूछा—"यही फिल्म कम्पनी है? धत्तेरी की, बहुत शोर सुनते थे"'शोर, यह तो बताइये, इस समय यहाँ क्या हो रहा है?' एक बोला—"अभी तो किछु नाहीं होता, पहले भी काम हुआ, बाद में भी फिनु होगा।' दूसरा बोला—"आप क्या नाउकी के वास्ते आया है?" चाचा बोले "जी. आया तो था मैं बहुत कुछ के वास्ते, लेकिन हौसला पस्त हो गया।" पहला—"आप पंडित हाय? कोविता लिखना आउर इस्टोरी भी लिखने सकता?"

चाचा—"जी, कुछ कुछ!"

दूसरा—"कुछ हारज का बात नई हाय, आप इस्टोरी दूसरा दिन लाइये और हम बोलता एक फाइनेन्सियर भी ठीक कीजिये। सिरीफ बीस हजार रुपेया लगायेगा, बाकी चालीस हजार हाम लोग लगा देगा। तीन महीना मे पिक्चर खलास। तीन-चार लाख मे बिक जायेगा, ताकदीर मारने से जादा भी होने सकता। बस, आधा नोफा आप लोगों का, आधा हम लोग लेगा। आप ऐसा कर सकता?" चाचा समझ गये कि दिवालिया कार-खाना है। मन में सोच गये, कर्मचारी इतना गिर गया है कि

एक मेरे जैसे साधारण व्यक्ति से भी विजिनेसट्रिक खेलता है। प्रगट मे बोले 'मै इसीलिये तो आया ही था खैर, सामान वगैरह तो दिखाइये—कैसा है।"

दूसरा—"सामान साब है। केमरा, साउण्ड, लेवोरेटरी, सीनसीनरी, फरनीचर, ड्रेस, आइये देखिये।" तीनो उठ खडे हुए। चाचा को घुमा-फिरा कर सभी चीजें दिखलायी गयीं, और उनके बारे मे समझाने की चेष्टा भी की गयी। चाचा ने देखा, जैसे सभी चीजे किसी सिनो-म्युजियम मे रखने लायक है, बरसो-से बेकार-बेतरतीब पड़ी हुई जिन्दगी के शेष दिन बुरी तरह बिता रही है। दीवारो के पलस्तर गिर रहे है, कहीं-कहीं वर्षा-पानी के चूते रहने से उनमे जैसे कोढ के दाग़ उभड़ आये हैं। मैदान मे घास और जङ्गली झाड-झंखाड उग आये हैं। कूड़े-कर्कटो का उठानेवाला भी शायद नही है।

लौटकर सब ऑफिस मे आये। पहले ने चाचा से पूछा "आप सिगरेट किम्बा वड़ी-बड़ी खाता है?"

चाचा—"खाता नहीं पीता हूँ।"

दूसरा—"कोन मार्का का पीता?" चाचा ने मन मे समझा चच्चू के पास है नहीं, मुझी से जटना चाहते हैं। बोले—"सभी प्रसिद्ध-प्रसिद्ध मार्के की बीड़ियाँ इस्तेमाल करता हूँ, किन्तु साथ मे लेकर नही चलता।"

(१)

प्रोफेसर रणधीर बड़े ही सज्जन और साहित्यिक स्वभाव के सहृदय-व्यक्ति हैं। अत्यन्त रसिक होने पर भी पक्के सदाचारी हैं। अभी तक अविवाहित हैं। निहु त-कालेज में इतिहास के प्रोफेसर हैं। उससे जो समय बचता है, अधिकांश साहित्य और समाज की सेवा मे लगाते हैं। नवीन ढंग की कविता मे आपकी प्रतिभा विकासोन्मुखी है। कहानियाँ भी अच्छी लिखने लगे हैं। हाल ही में आपका एक सुन्दर उपन्यास 'अनुराग' बड़ी ख्याति पा चुका है। अब एक दूसरे की तैयारी कर रहे हैं— उसी में आजकल अधिक समय लगाते हैं। उन्हे आशा है—यह रचना भी अद्वितीय होगी। आपमे यह एक विचित्रता है कि अप्रकाशित रचनाओ को किसी से भी नहीं दिखाते, और न उसके विषय मे कुछ कहते ही हैं। प्रकाशित होने पर एकाएक लोग जब उनकी आश्चर्यजनक प्रशंसा करते हैं, तो उन्हे एक अपूर्व आनन्द आता है।

रणधीर एक अच्छे व्याख्याता, अभिनेता भी हैं। नगर और प्रान्त मे आपकी अच्छी ख्याति है। चपरासी से लेकर प्रिन्सिपल तक आपको प्यार करते हैं—यही कारण है कि इस लोकप्रियता ने जहाँ इतने मित्र और सहानुभूति रखनेवाले बना छोड़े हैं, वहाँ मनुष्यता और सभ्यता की आड़ में छिपे-भयानक डंकवालों को भी, बुरी तरह आकर्पित कर लिया है।

(२)

कालेज के प्रिन्सिपल श्री शारदारञ्जन बन्दोपाध्याय डोमीसाइल्ड बंगाली हैं। आपके पूर्वज बहुत दिनो से बिहार मे रहते आए हैं। ब्रह्मो होते हुए भी सनातन धर्म के आचार-विचार और व्रत-उत्सवो पर आपकी बडी श्रद्धा है। पुरातत्व और धार्मिक-विवेचना पर आपके लेख अंगरेजी, बंगला और हिन्दी पत्रिकाओ मे प्रायः निकलते रहते है। आपकी पत्नी का देहान्त हो चुका है। लड़का बैरिष्ट्री करता है। पुत्री देवबाला उसी कालेज के एफ० ए० में पढ़ती है। बड़ी भली, भोली, और कुछ चंचल-सी, सुन्दरी बालिका है। प्रोफेसर रणधीर उसके हिन्दीट्यूटर हैं। फलस्वरूप हिन्दी की उसने साधारण-सी योग्यता प्राप्त कर ली है। कालेज की 'हिन्दी-सम्वर्द्धिनी समिति' की हस्तलिखित पत्रिका और उसकी बैठको मे, उसकी गद्य-पद्य-रचनाएँ बड़े चाव से पढ़ी, और सुनी जाती हैं। इसका सारा श्रेय रणधीर को है। प्रिन्सिपल साहब को रणधीर पर पूरा विश्वास है, इसलिये दोनो के साथ-साथ घूमने-फिरने का उनका खास आदेश है। किन्तु सबेरे-शाम देवबाला को पढ़ाने के लिये रणधीर को उसके घर पर ही आना पडता है। इन दोनो गुरु-शिष्या के बीच किसी तरह का कोई विशेष स्नेह या आकर्षण नहीं है, दोनो एक-दूसरे के प्रति पारस्परिक कर्तव्य के ध्यान से ही मिलते-जुलते हैं। परन्तु, रणधीर के सामाजिक-क्षेत्र की यशाग्नि

पहला—"अच्छा करता है। हम लोग भी इहाँ नेई पीता, स्टूडियो है न? हुकुम नेई है।"

चाचा—"अच्छा तो जय माया की, इस समय मैं जाता हूँ। फिर आऊँगा।"

दूसरा—"आडर जैसा मैंने वोला, उपाय करके आइयेगा। हम आपको अलग भी कमीशन देगा।"

"जरूर आऊँगा।" कहकर चाचा लौटे। गेट पर आकर पहरेदार से बोले—"तुमने ठीक ही कहा था भाई: तुम्हारी जगह के सिवा यहाँ और कोई भी जगह नहीं है—और उस पर तुम विराज ही रहे हो, लाचार लौटा जाता हूँ।"

———

खो गया था

यह दिलचस्प कहानी लेखक द्वारा सम्पादित साप्ताहिक 'आलोक' [पटना] में बहुत पहले प्रकाशित हो चुकी है। अन्तिम अंश में कुछ आवश्यक परिवर्तन कर दिया गया है। भगवान् करें, पाठक-पाठिकाओं का भी इस तरह का कुछ खोया हुआ मिल जाय,·· ·· ··

में अहर्निश झुलसनेवाले कुछ ईर्ष्यालु साथियों, और देवबाला की कई सहपाठिनों तथा सहपाठियों के भाव इन दोनों के प्रति अच्छे नहीं हैं। कुछ प्रोफेसर भी, इस साधारण और नवयुवक प्रोफेसर के सौभाग्य पर मन-ही-मन ईर्ष्या करते।

(३)

प्रिन्सिपल-निवास के पश्चिम एक छोटा सा नजरबाग है, उसी से ठीक सटा हुआ रणधीर का बंगला है। बंगले की पूरब ओरवाली खिड़की खोल देने से प्रिन्सिपल-निवास अच्छी तरह देखा जा सकता है; वरन ऊँचे स्वर में वार्तालाप भी हो सकता है। रणधीर का वहाँ आना-जाना उत्तर पथ से है, बाग से रास्ता नहीं है।

एक रात बड़े जोरों का अन्धड़ आया-तूफान का छोटा संस्करण। कितनी ही झोपड़ियाँ उजड़ गईं। वृक्षों की शाखाओं और पत्तों से वसुन्धरा की छाती भर गई। छोटे-छोटे पेड-पौधे धराशायी हो गये। लोगों की वस्तुएँ तितर-बितिर हो गईं। रणधीर जब तड़के उठकर अपने पढ़ने-लिखने के कमरे में गया, तो दोनों ओर की खुली खिडकियाँ देखकर ही उसे चिन्ता हुई। कमरे का सारा कागज़ी सामान नीचे अस्तव्यस्त पड़ा था। समाचारपत्र, चिट्ठियाँ, लेटरपेपर आदि की बुरी गत हो रही थी। सब से बढ़ कर दुख यह देखकर हुआ कि उसके मनोयोग का आधुनिक केन्द्र, अनेक हिस्सों में इधर-उधर फैला

हुआ है। वह था उसका बड़ी साधना से लिखा जानेवाला उपन्यास। जल्दी जल्दी सारे सामानो को टीक कर वह उपन्यास के पन्ने मिलाने लगा। सब तो मिल गए, पर एक न मिला। बड़ी बेचैनी हुई। इसमे रणधीर ने मानव हृदय की सच्ची और जीती-जागती तस्वीर उतारी थी। उसकी सारी विद्वत्ता, विदग्धता सरसता और अभाव-आकाक्षा का निचोड, कागज़ के उस क्षुद्र पृष्ठ पर लेखनी के रास्ते चू पडा था। व्याकुल होकर उसने दूबारा-तिबारा खोजा। आलमारी, टेबल, समाचारपत्रो के पृष्ठ तमाम छान डाले गये, पर वह हृदय-धन न मिला। बाग मे भी बहुत दूर तक इधर-उधर देखा, कहीं कोई कागज़ का टुकड़ा दिखलाई नहीं पड़ा। निराश हो, सिर पर हाथो को रख, कुर्सी पर थप् से बैठ गया। सोचा - 'ऊँह, दूसरा लिख लूँगा, इतनी बेकली की क्या जरूरत?' फिर ध्यान आता 'नहीं नहीं, वैसा नही लिखा जा सकता, होगा तो उससे अच्छा या बुरा। ओह, बड़ा मोह आता है!' सिर उठा कर घडी की ओर देखा। 'अरे, साढ़े नौ? अभी तक शौच-स्नानादि से भी छुट्टी नहीं पाई। देवबाला के ट्यूशन का समय भी निकल गया। कालेज जाने का समय हो रहा है...।'

एकाएक शरारत भरी मुस्कुराहट और जिज्ञासा भरी दृष्टि से देवबाला ने कमरे मे प्रवेश किया। रणधीर ने उसका ऐसा भाव कभी न देखा था। कुछ समझा नहीं। सोचा, देरी की वजह चली

आई हूँ। ..मगर आज तक तो कभी ऐसा न हुआ? इस क्षणिक मूक—दृश्य ने जैसे देववाला के हृदय स्थित किसी शंका को गिजा पहुँचा दी हो: उसने तनिक सर हिला कर इसका प्रदर्शन किया। रणधीर को क्या मालूम? उसने कहा—"देवा! आज कुछ जरूरी कार्यवश न आ सका; शाम को दोनों समय का पूरा हो जाएगा। नहीं तो...देखता हूँ, तुम पुस्तक आदि भी न लाईं यहीं कुछ पढ़ा देता। अच्छा जब तक कोई मासिक-पत्र देखो, मैं शीघ्र ही स्नान आदि से छुट्टी पा लूँ।" फिर वही मूक-मुस्कुराहट!!...जिज्ञासा भरी चितवन!!! रणधीर ने जैसे कुछ समझा नहीं, कहा, 'आओ बैठो न, खड़ी क्यों हो?

"नहीं, यों ही आई थी आपको देखने। अब जाती हूँ, शाम को आइएगा न?"

'जरूर।'

(४)

शाम को रणधीर जब पढ़ाने गया, तो सदा से कुछ विपरीतता का आभास पाया। बात मे, व्यवहार मे, अदब में, और पढाई मे कुछ-कुछ अनोखापन-सा अनुभव हुआ। समय पूरा हो जाने पर भी, देववाला कुछ और पढ़ने की इच्छा जताने, और अनावश्यक बातें बनाने लगी। रणधीर ने आज की नवीनताओ पर कुछ ध्यान न दिया। समझा, बालिका ही तो है; अकारण चप-

लता करना उसका स्वभाव है। थोड़ी देर और पढ़ा कर चलने को तैयार हुआ। देवबाला ने कहा 'आप......आप शिक्षा-मार्ग का पथ दर्शाकर ही ठहर जाना चाहते हैं, आगे नहीं बढ़ते। मै बढ़ना चाहती हूँ...।'

रणधीर ने सहज स्वभाव से कहा "बढ़ो न, जितना चाहो बढ़ो। मै शक्ति भर तुम्हे बढ़ाने को तैयार हूँ।"

देवबाला ने, उनकी ओर न जाने किस भाव से थोड़ी देर तक देख कर कहा 'तो फिर...? अच्छा जाइए, सवेरे आइयेगा न?'

"क्यो? आऊँगा क्यो नहीं?" कहता हुआ रणधीर डेरे चला।

इसी प्रकार रणवीर को नित्य कुछ-न-कुछ नवीनताओ का अनुभव होने लगा। एक दिन ऐसा विदित हुआ कि वह कुछ कहना चाहती है, किन्तु छिपा रही है; और ऐसा सांकेतिक भाव दर्शा रही है, जिससे रणधीर ही को कुछ कहना पड़े। वह अभी तक तो अनजान था, परन्तु अब जैसे समझदारी का तकाजा आरम्भ हुआ। सोचा, 'कही यह मुझसे प्रेम तो नहीं करने लगी है......।' सारे लक्षणो को मिलाकर देखा, ठीक यही बात है। "तो......तो, इसका आरम्भ कैसे हुआ?......मैंने तो स्वप्न मे भी ऐसी कल्पना नही की, हाव-भाव दर्शाना तो दूर की बात है। तो क्या स्वयं ही उसके मन मे यह बात उठी? मुझसे

ऐसा कोई आकर्षण भी तो नहीं है !" परिणाम यह हुआ कि अब यह भी संकोच करने लगा। इसकी निर्दोष आँखें जो निर्विकार भाव से अपना कर्तव्य पालन कर रही थीं, अब सामना करने में जी चुराने लगीं। इससे उधर का साहस बढ़ चला। अब अधिकांश समय रणधीर के साथ ही बिताना चाहती है, और रणधीर जैसे भागना चाहता है। पिता से आज्ञा लेकर अब वह रणधीर के बँगले पर ही पढ़ने के लिये आने-जाने लगी है। इस अत्यन्त बढ़ती हुई घनिष्ठता को देखकर रक़ाबत और ईर्ष्या का बाजार गर्म हो उठा। लोगों की मनोवृत्ति प्रतिकार के लिये उत्तेजित हो गई। सब ताक में रहने लगे।

(५)

एक दिन शाम की पढ़ाई समाप्त कर देवबाला अकारण ही इधर-उधर की बातें करके जैसे भागते हुए रणधीर के मन को बरबस रोक रही है। आज जैसे उसने कुछ ठान-सी ली है। एकाएक पूछा—'मास्टर साहब, प्रेम किसे कहते हैं ?'

रण०—(कुछ सोच कर) 'प्रेम तो किसी के प्रति लालसा-रहित आकर्षण को कहते हैं।'

देव०—'लालसारहित आकर्षण ?'

रण०—'हाँ'

देव०—'यह सम्भव है ?'

रण—'सम्भव नहीं है तो पुस्तको मे वर्णन क्यो हैं ? लोग करते क्यो है ?'

देव०—[कुछ ठहर कर] 'आप यह सैद्धान्तिक रूप से कहते है या व्यावहारिक ?'

रण० —' · · · दोनो'

देव०—[मुस्कुराने की चेष्टा करती हुई] 'दोनो किस प्रकार ? आपने इसकी व्यावहारिकता का स्वयं अनुभव किया है ?'

रण०—'मैने नहीं किया है, करनेवाले अनुभवियो के विचार तो पढ़े हैं ।—सुने है ।'

देव०—'स्वयं नहीं किया है'

रण०—'नहीं'

देव०—'कभी चेष्टा की है ?'

रण०—'नहीं, कभी नहीं· · ···मगर देवा, आज तू ऐसे प्रश्न क्यो कर रही है ? आज तो····· '

रणधीर की ओर एकटक देखती हुई—एकाएक देववाला ने उत्तेजित स्वर मे कहा—

'क्यो प्रश्न कर रही हूँ ?·····निठुर !·· ·· ' और फिर दोनो हाथो से सर थाम, फफक फफक कर रो उठी। बेचारे रणधीर को कुछ न सूझा कि क्या करें । इस अप्रत्याशित घटना से वह हक्का-बक्का सा हो, कुछ देर तक तो बैठा रहा; फिर आश्वासन देने के लिये डरते-डरते उसके सर पर हाथों को

फेरना आरम्भ किया। परन्तु देवा का रोना घटने के बदले बढ़ता ही गया। इतने में एक और घटना हो गई, जिसकी और भी आशा नहीं थी। एकाएक प्रिन्सिपल साहब कई प्रोफेसरों, विद्यार्थी-विद्यार्थिनी, और कुछ बाहरी मनुष्यों के साथ आ धमके; और अपशब्द कहते हुए एक ऐसी लात देवबाला को लगाई कि वह बेचारी औंधे मुँह जमीन पर गिर पड़ी—और बेहोश हो गई। रणधीरको ऐसे-ऐसे अपशब्द कहे गये, ऐसी लानत-मलामत की गई कि वह पागल की तरह चेष्टाएँ करता हुआ रो पड़ा। फिर एकाएक बाहर की ओर भागा। लोगों ने पकड़ लिया। इसके बाद प्रिन्सिपल साहब बेहोश देवबाला को विद्यार्थिनियो की सहायता से उठा कर निवास की ओर चले। साथ मे पागल कैदी-रणधीर और अन्य लोग भी।

× × ×

थोड़ी देर की चेष्टाओ के बाद देवबाला की आँखें खुलीं। उसने चारो ओर देखा। रणधीर एक ओर उद्दंड अपराधी की भाँति निश्चेष्ट बैठा था। प्रिन्सिपल साहब ने अत्यन्त कोमल स्वर मे पूछा "देवा, तू इस नराधम के फन्दे मे कैसे आई ?"

वह थोड़ी देर तक पिता, फिर रणधीर की ओर देख कर बोली "पिताजी, पहले इसीने मेरे पास प्रेम-पत्र भेजा, मैं अनजान इस पर रीझ बैठी......फिर-फिर इसने अनभिज्ञता जता कर मुझे अत्यन्त त्रास दिया, ओह !"

रणधीर—"ईश्वर तू साक्षी है। क्या मै उस पत्र को देख सकता हूँ ?"

देवबाला—"पिता, इस निठुर का साहस तो देखो। अस्वीकार करने का क्या ढग निकाला है। अच्छा मै दिखाती हूँ।" इतना कह कर पढ़ने-लिखने की टेबुल के दराज मे से एक मोड़ा हुआ लिखित पत्र निकाल कर उसने रणधीर के मुँह पर फेंक दिया।

पत्र देखते ही रणधीर की चेष्टाएँ बदल गई। वह एकाएक उठ खड़ा हुआ और आनन्दातिरेक से विह्वल होकर बोल उठा 'देवा, यह तुझे मिला क्योंकर ?'

देव०—"जिस दिन, आप पढ़ाने नही आए उसी दिन सबेर टेबुल पर पड़ा देखा, उठाकर पढ़ा। मै आपके अक्षर पहचानती थी। समझ गई, आप ही ने लिखा है—और मेरे ही पास लिखा है। जब आप उस दिन नही आए, तो पूरा विश्वास हो गया कि आपको संकोच हो रहा होगा। तो क्या यह पत्र...?"

रणधीर—"पगली, यह प्रेम-पत्र तो अवश्य है, जिसे मेरे अप्रकाशित उपन्यास के प्रेमी ने अपनी प्रेमिका को लिखा है। देखती नहीं, कोने मे नत्थी का चिन्ह। ओह, यह सारा अन्धेर उस दिन के अन्धड़ का है, उसी ने मेरे कमरे से उड़ा कर यहाँ पहुँचाया।"

अब तो असलियत समझते किसी को देर न लगी। प्रिन्सि-

पल साहब और अन्य लोगों को बड़ा पछतावा होने लगा। माली ने भी स्वीकार किया, कि जरूरी क़ागज समझ कर उसने ही टेबुल पर रख दिया था।

(६)

कई दिन बीत गये। बात आई-गई हो गई। लोग इस घटना को एक प्रकार भूल-से गये। किन्तु रणधीर भूलने की बजाय एक विचित्र मानसिक उलझन में फँस चला। कालेज में या और कहीं भी, देवबाला की ओर देखने में न जाने क्यों संकोच अनुभव करने लगा। उधर, देवा के स्वभाव में भी परि-वर्तन। हर दम जैसे लज्जा में गडी सी रहती—चिंताशील। पहली सी चपलता, नटखटी, बच्चों की सी हँसी, न जाने कहाँ खो गई। घर पर कुछ उदास, कुछ सहमी-सी तो रहती ही है, कालेज में भी यही हाल है। वहाँ की साहित्य-कला-गोष्ठियों में बुलबुल ने चहकना छोड़ दिया है। जहाँ तक होता है, रणधीर से दूर ही रहने की चेष्टा करती—है आँखें चुराती है।

एक दिन प्रिंसिपल साहब का ध्यान एकाएक इस ओर आक-र्षित हुआ। बुलाकर पूछा—

'क्यों देवू, तबीयत तो ठीक है न? अजीब सूरत बनाए रहती है—आजकल! बात क्या है?'

देव०—'नहीं पिताजी, कुछ ऐसी बात तो नहीं है। परीक्षा सर पर है न—'

प्रि०—'ओ, समझा। इसीसे, जैसे तू घर मे रहती ही नहीं, ऐसा लगता है। वह हुल्लड़बाजी, धमाचौकड़ी सब बन्द है। (हँसकर) कभी-कभी कुछ शरारत कर लिया कर, इसके बिना घर सूना-सूना लगता है। अच्छा, रणधीर यहीं पढ़ाने आता है या तू ही उसके घर जाती है?'

देव०—'जी······'

प्रि०—'क्यो? चुप क्यो हो गई?'

देव०—'मै उनसे नहीं पढ़ती।'

प्रि०—'अरे! यह क्यो?'

देवा ने फिर चुप्पी साध ली।

प्रिंसिपल ने समझा, 'अपराध की लज्जा बच्ची को अभी तक खाए जा रही है' प्रकट मे मुस्कुराकर बोले—'अरे तूने जान बूझ कर थोड़े ही कुछ किया है? भूल-भ्रम सभी से होते हैं। अच्छा, क्या वह भी नहीं आता?' देवबाला बोली नहीं, केवल सिर हिलाकर 'नहीं' का संकेत किया।

प्रिंसिपल बोले—'उसके न आने की कौन सी बात थी? गँवार कहीं का! खैर, यहीं बुलाता हूँ उसे, माफी माँग लेना। आखिर तुम्हारा गुरु है न! अरे ओ जीतू—जीतू···।'

जीतू बाग का माली है, घर के छोटे-मोटे फुटकर काम भी कर देता है। सुनते ही 'जी सरकार' कहता दौड़ा आया प्रिंसिपल साहब ने आज्ञा दी—'जा झटपट रणधीर जी को बुला ला।'

जीतू जैसे ही जाने लगा कि देवा ने झट से रोक दिया।

'नहीं जीतू, मत जाना। मैं ही संध्या को उनके यहाँ मिल आऊँगी। अभी जरूरत ही क्या है?'

प्रिंसिपल साहब ने सोचा, जब कई दिनों से आपस में संकोच की दीवार नहीं ढही तो फिर इनमें से कोई भी स्वयं साहस नहीं करेगा। जीतू से बोले—

'नहीं रे, जा तू प्रोफेसर जी को बुला ला। कहना मैं बुला रहा हूँ।' जीतू के जाते ही लगे बेटी को समझाने। "सच्चे मन से अपराध के लिये पछतावा करने से जी का बोझ हलका हो जाता है। कितना नेक है बेचारा। इतना अपमान हुआ, किन्तु शान्त बना रहा। जा, कपड़े बदल कर अपने कमरे में आ, वह आता ही होगा।" देवा चुपचाप चली गई। प्रिंसिपल जैसे ही अपने रूम से बाहर निकले कि जीतू लपका हुआ आकर बोला 'हजूर, जैसे ही मैं पहुँचा, वह ताँगे पर सवार होकर स्टेशन की तरफ़ जा रहे थे। बिस्तर-बिस्तर भी साथ में है। कह रहे थे, घर जा रहा हूँ। यह चिट्ठी दी है।' प्रिंसिपल ने पढ़ कर देखा—क्षमा प्रार्थना के साथ इस्तीफ़ा है, कालेज की प्रोफेसरी से। कुछ सोच कर जीतू से कहा 'दयाल सिंह को कह दे कार ले आवे – फ़ौरन।'

कार आई, सवारी चढ़ाकर स्टेशन की ओर हवा हो गई। स्टेशन-कम्पाउन्ड में जैसे ही घुसी, सामने रणधीर तांगे से उतर

रहा था। पास ही कार रुकवा कर प्रिंसिपल साहब उतरे। उन्हे देखते ही रणधीर सकपका गया। प्रणाम के लिये हाथ उठाकर भी, गुम-सुम खडा रहा—दूसरी तरफ देखता हुआ।

'कहाँ जा रहे हो ?'

'घर'

'क्यो ?'

चुप।

'चलो लौट चलो। गुरु-चेलिन आपस मे समझौता कर लो। देवा माफी चाहती है। देखो, भूल-भ्रम मनुष्य से होते ही हैं। माना कि तुम्हारा अपमान हुआ। मुझे भारी दुख है, क्योंकि तुम्हे भी मै पुत्र जैसा ही समझता आया हूँ।' रणधीर घबरा कर बोला—

'नहीं नहीं सर, मुझे जाने दीजिये।'

प्रि०—'माना कि आत्म-अपमान का अभिमान स्वाभाविक है, पर उसका समाधान हो जाने पर जिद पकड़ लेना ठीक नही। और ..'

रणधीर बीच ही मे बात काट कर बोला—

'नही नही, सर। यह बात नहीं है।'

प्रि०—'तब लौट चलो। देवा को बड़ा पछतावा है। इसी सोच मे वह हरदम उदास रहती है। तुमसे माफी माँग लेगी तो उसका जी हलका हो जाएगा। देखते नही हो, आजकल

कैसी होती जा रही है ? चलो, बचपना रहने दो ।'

अनिच्छापूर्वक यंत्रचालित पुतले की भाँति रणधीर अपने प्रिंसिपल साहब के साथ लौटा।

कार से उतरकर दोनों बैठके में आए। रणधीर को बैठने के लिये कह कर प्रिंसिपल देवा के कमरे की तरफ़ चले।

उसके द्वार के कुछ इधर ही जैसे पहुँचे, देवा को आवेश के साथ किसी से बातें करते सुना। जरा रुक गये। वह देवा की अभिन्न सखी राधा थी। शायद वार्तालाप का सिलसिला देर से चल रहा था। जितना अंश सुना, इनके लिये काफ़ी था। देवा सखी से कह रही थी—'जैसे ही वह उपन्यास वाली चिट्ठी तूफ़ान में उड़कर मिली, बिना अधिक सोच-विचार किए मैं मन-ही-मन उन्हें आत्म-समर्पण कर बैठी। रहस्योद्घाटन के समय तक, हरदम मैं इसी भाव में विभोर रही। और अब तो······।'

(७)

प्रिंसिपल साहब की समझ में अब सब कुछ आ गया। पहले दोनों का बर्ताव कुछ और ही समझ रहे थे। अब उनकी आँखें खुल गईं। फिर तो जो कुछ किया जा सकता था, उन्होंने उदारतापूर्वक किया। कई दिनों तक खूब चहल-पहल रही। सारा काम सादगी और सुन्दरता से सम्पन्न हुआ।

———

स्वर्ग में सायरन

[इस नाट्य-रूपक [जिसे इन दिनो 'एकाकी नाटक' कहा जाता है] का तर्ज—क्या एकदम नया नहीं है। फिर भी सुप्रसिद्ध (पूज्य श्री बाबूराव विष्णु पराडकर के द्वारा सम्पादित) ससार के होली-विशेषाक [६-३-४४] में प्रकाशित होने के बाद, इस ढंग की कई चीजें छपी हैं। पाठक तुलना करेंगे।

युद्धकाल में, शत्रु के बमबाजों से जनता को सावधान करने के लिये सायरन बजती है। स्वर्ग मे इसका बजना आश्चर्य्यजनक, ही नहीं, अस्वाभाविक भी है। किन्तु इसका तत्वविवेचन उतना ही सत्य-स्वाभाविक और मनोरजक है। पाठक पढ़ना आरम्भ करते ही समझ लें—सायरन सुन रहे हैं। इसके बाद—]

प्रथम दृश्य

[स्थान—स्वर्गसभा, विष्णु, इन्द्र, बृहस्पति, कुबेर, वरुण, चित्रगुप्त यथास्थान बैठे हैं। उर्वशी नृत्य कर रही है। वाद्य-कला रंग पर है। एकाएक सायरन—खतरे का भोंपा बज उठता है। नृत्यवाद्य रुक जाते हैं। सब चकित—आशंका से एक-दूसरे को देखने लगते हैं। इसी समय यमराज शीघ्रतापूर्वक एक स्वयंसेवक के साथ प्रवेश करते हैं। सायरन की ध्वनि पर ध्यान जाते ही, स्वयं-सेवक साश्चर्य बोल उठता है]

स्वयं०—अरे! यहाँ भी सायरन? भागिये, भागिये आप लोग; और ऐसी जगह छिपिये जहाँ बम असर न कर सके।

इन्द्र—बम?

स्वयं०—हाँ महाराज, वह आपके वज्र का भी गुरु है। जल्दी भागिये, क्लियर हो जाने के बाद फिर बहस-विचार कीजियेगा।

कुबेर—क्लि-य-र हो जाने के बाद? यह क्लियर......

स्वयं०—बस रह गये न सीधे देवता! अरे महाराज, क्लियर का अर्थ है—भय दूर हो जाने की घण्टी। जिस प्रकार यह भय का भोंपा बज रहा है, उसी प्रकार भय दूर हो जाने का भी बजता है।

[सायरन की ध्वनि बन्द हो जाती है]

वरुण—यह तो बन्द हो गया।

स्वयं०—इससे क्या, जब तक क्लियर की घण्टी नहीं बजती तब तक भय बना रहता है।

विष्णु—धर्मराज जी, यह कौन है ?

यम—यह है......

चित्रगुप्त—प्रसिद्धपुर के स्वेच्छासेवक। इनकी आकस्मिक मृत्यु एक महाभयानक विस्फोटक आग्नेय-अस्त्र द्वारा होने-वाली थी।

यम—हाँ महाराज, सचमुच वह महाभयंकर-प्रलयकर अस्त्र है। मै तनिक सा बच गया। नहीं तो, जो सबके प्राण हरण करता है, उसके प्राण स्वयं हरण हो जाते महाराज।

स्वयं०—उसी अस्त्र का नाम बम है। अरे आप लोग छिपते क्यो नहीं ?

विष्णु—बम तो हमारे शंकर जी के नाम के पहले लगाकर बमशंकर के नाम से भक्तजन उनकी आराधना करते हैं।

स्वयं०—अजी भगवान् महाशय, शंकर जी मे जो शक्ति थी, स्वतन्त्र राष्ट्रो के वैज्ञानिको ने उसमे से 'बम' निकाल लिया, और केवल शकर भक्तो के लिये छोड़ दिया है। खैर, अभी बहस छोड़िये और कहीं जल्द छिप जाइए। संसार बनता-बिगडता ही रहता है, मगर आप ही लोग अगर बमदेवता के शिकार हो गये, तो बस कहानी समाप्त। प्रसिद्धपुर मे सायरन बजने पर आप ही जैसे हुज्जतियो को समझा रहा था कि एकाएक शत्रु के

यमवाज आये, और .....। अरे महाराज जल्दी कीजिये। हम सांसारिकों पर आप लोग खूब हुक्म चलाते आ रहे हैं, इस समय कम-से-कम अपनी भलाई के विचार से ही सही, मेरा हुक्म मान जाइये।

इन्द्र—बृहस्पति जी, आप देवलोक की बुद्धि हैं। कहिये क्या उचित है?

बृ०—अभी तो इस सेवा-सिपाही की बात मान ही लेनी चाहिये; तब तक मैं विचार भी कर लूँगा कि क्या रहस्य है।

इन्द्र—अच्छा, तो अभी हमलोग कल्पवृक्ष के नीचे आश्रय ले। और जैसा कि (मुस्कुराकर) मनुष्य महाशय ने कहा है भय दूर होने की ध्वनि होते ही पुन: यहाँ एकत्र हों। मेरी राय है (विष्णु से) भगवन, कि उस समय कुछ मर्त्यलोकवासी भी जो स्वर्गलोक में निवास कर रहे हैं, परामर्श में सम्मिलित किये जायें।

विष्णु—ऐसे कई महामानव नर्क में भी हैं; इस असाधारण अधिवेशन में उन्हें भी बुला लिया जाय।

स्वयं०—अरे दुहाई है आप लोगो की, जल्दी कीजिये। सम्मेलन होता रहेगा।

[सब उठकर जाते हैं]

द्वितीय दृश्य

[स्थान—कल्पवृक्ष की छाँह। उपरोक्त सभी महाशय उपस्थित है। क्लियर की सायरन बजती है]

स्वयसेवक—बस, खतरा टल गया । अब आप लोग निश्चिन्त होकर बहस-विवाद कर सकते है । चलिये सभा-भवन मे ।

इन्द्र—यमराजजी, जिनके नाम निश्चित हुए है, उन्हे सूचना दे दीजिये, दो घंटे बाद सभा-भवन मे आ जायॅ। तब तक हम लोग विश्राम कर ले ।

यम—चित्रगुप्तजी, (स्वयंसेवक की ओर संकेत करके) इन्हे कौन सा स्थान दिया जाय ?

चित्र०—कर्मानुसार तो नर्क मिलना चाहिये ।

विष्णु—परन्तु, इनकी मृत्यु परोपकार मे हुई है, अतएव इन्हे स्वर्ग मिले ।

इन्द्र—यमराजजी, इनके लिए स्वर्ग मे ही व्यवस्था कीजिये ।

स्वयं०—मगर महाराज, नर्क मे मेरे बहुत से साथी मेरी प्रतीक्षा कर रहे होगे ।

विष्णु—(मुस्कुराकर) उन्हे कह दिया जायगा कि अगले जन्म मे आप ही की भॉति मृत्यु प्राप्त कर स्वर्ग मे आपसे साक्षात् करे ।

[सब हॅसते हुए जाते है]

तृतीय दृश्य

[स्थान—वही, तथाकथित सम्मेलन मे उपरोक्त देवताओं के अतिरिक्त कुछ अन्य व्यक्ति उपस्थित है ।]

इन्द्र—बृहस्पतिजी, अपने विचार प्रगट कीजिये ।

बृह०—महानुभावो, सायरन-भय का भोंपा—इन दिनों मर्त्य-लोक में कहीं न कहीं नित्य बज रहा है। क्योंकि सारा विश्व इस नाशकारी युद्ध में त्रस्त है। एक पक्ष दूसरे पक्ष पर विमानों द्वारा महाघातक आग्नेय—जिसे बम कहते हैं, बरसाता है। सायरन उन्हीं आक्रमणकारी विमानों के आने की चेतावनी है।

वरुण—किन्तु हमारे देव-लोक को तो ऐसे आक्रमणों का भय नहीं। न हमारा कोई शत्रु है, और न हमारी भौगोलिक स्थिति ही ऐसी है। तो भी आज की यह भयंकर शंख ध्वनि—

बृह०—प्रतिध्वनि है विश्व के सायरन की। परन्तु वास्तव में यह देवलोक के लिए सायरन ही है!

कुबेर—अर्थात् हमलोगों के लिए भी भय का कारण है?

बृह०—हाँ, निश्चय!

वरुण—किस प्रकार?

बृह०—यदि मर्त्य-लोक न रहा, विश्वविध्वंस हो गया, तो लोक-परलोक की क्या उपयोगिता? यह लोक तो एक प्रकार मर्त्यलोक-वासियों का उपनिवेश है। हम कुछ कर्मचारियों को छोड़कर, शेष सभी स्वर्ग-निवासी विश्व-प्रवासी ही तो हैं।

यम—किन्तु पहले भी तो कई बार प्रलय हो चुके हैं, जिनसे विश्व का नाश होता रहा है।

बृह०—वे ईश्वरेच्छा-प्रेरित प्राकृतिक प्रलय थे। उनमें स्वर्ग, मर्त्य और पाताल की समाप्ति हो गयी थी। किन्तु आजकल तो

अप्राकृतिक प्रलय हो रहा है। यह मनुष्यो की—जातियो की महत्त्वाकांक्षाओ का संघर्ष है।

स्वयं०—तब तो इसमे जो जूझते या सहायता करते होगे, उन्हे नर्क ग्रास होगा ?

इन्द्र—नहीं, जो स्वदेश की भलाई समझ कर अपने शासन-सञ्चालक की आज्ञा से सहयोग देते होगे, उन्हे तो स्वर्ग प्राप्त होगा।

स्वयं०—अच्छा, अभी-अभी जो भारत, विशेषकर बङ्गाल मे भूख से मरे हैं या मर रहे हैं उनको ?

इन्द्र—माँकी गोद की तरह उन्हे स्वर्ग मे सबसे उत्तम स्थान प्राप्त होगा।

स्वयं०—और जो कर्मचारी या व्यापारी इस मृत्यु-महोत्सव के दायी है ?

इन्द्र—अकारण मृत्यु का दायित्व जिन पर है, उनके लिये नर्क का विधान सर्वविदित है।

स्वयं०—मगर उनमे से अनेक भूखो के लिए दान अथवा इन्तज़ाम कर रहे हैं ?

इन्द्र—वे अपने महापाप का लघु-प्रायश्चित्त कर रहे हैं। हाँ, जो निःस्वार्थ-सहायता कार्य मे संलग्न हैं, यदि वे महापापी भी होगे तो उन्हे स्वर्ग पाने का अधिकार है।

विष्णु—(स्वयंसेवक से) और कुछ आपको पूछना है।

स्वयं०—जी...नहीं।

विष्णु—बृहस्पतिजी, अब आप अपना वक्तव्य पूर्ण कीजिये।

बृ०—मैं पूर्ण कर चुका। केवल निवेदन करना है कि आज जिस प्रकार सारा विश्व विविध वेदनाओं से व्यथित होकर तिल-तिल नाश को प्राप्त हो रहा है, उसकी प्रतिक्रिया देवलोक में भी हो सकती है इसी की चेतावनी स्वरूप यहाँ भी सायरन बजा है। अतएव पूर्ण विचारों के साथ इसके निवारण की चेष्टा करनी चाहिये।

विष्णु—आप सज्जनों को गुरु बृहस्पति ने सारी बातों को भलीभाँति समझा दिया है। इस विषय पर अब अपने-अपने विचार प्रगट कीजिये। सर्वप्रथम महाराजाधिराज विक्रमादित्य वक्तव्य दें।

विक्रमादित्य—मैं संक्षेप में ही निवेदन करूँगा। भिन्न-भिन्न संस्कृतियों, भाषाओं, जातियों तथा ऋतुओं के रहते हुए भी भौगोलिक सीमा-शृंखला के कारण विश्व-विख्यात भारतवर्ष में एकदेशीयता—राष्ट्रीय संस्कृति अवश्य है। इसी आदर्श की रक्षा वैदिक-काल से होती चली आ रही है। मेरे पूर्व के ऐतिहासिक महापुरुषों ने भी इसी ध्येय की रक्षा में ख्याति प्राप्त की। परन्तु जब-जब विदेशियों द्वारा राष्ट्रीय एकता छिन्न-भिन्न हुई, भारत की सारी सुव्यवस्था बिखर गयी। प्रान्तीयता, जातीयता, साम्प्रदायिकता आदि—कलह से गृह-युद्ध मचते रहे। प्रायः इसके दो

कारण प्रधान होते हैं। एक तो सीमाप्रान्तो के हडप और वहॉ लूट-मार मचाने की विदेशियो की कुचेष्टा और दूसरा आयात-निर्यात होनेवाले पदार्थों के कर-सम्बन्धी अनुचित लाभ उठाने की चेष्टा। हमारे जल, स्थल तथा पहाड़ी मार्गो पर सदैव उनके द्वारा आतंक उपस्थित होते रहते थे। इसी के निवारण के लिये उन विदेशी शासको से ही नहीं, उनके द्वारा बहकाये गये अपने प्रान्तीय शासको से भी हमे युद्ध करना पड़ा, और लुटेरे दूर खदेड़े जा सके। जिन्होने सन्धि चाही, उन्हे मित्र बनाया। जो बसना चाहते थे, उन्हे सादर स्थान दिया गया। ऐसा लगता है कि मेरे शासन के समय मे जो युद्ध के कारण थे, आज के विश्व-युद्ध का कारण भी प्रायः वैसा ही कुछ है। और जब तक राष्ट्रो मे यह लुटेरी प्रवृत्तियॉ रहेगी, तब तक संसार मे शान्ति न होगी।

विष्णु—शाहशाह अकबर कुछ कहे।

अकबर—मै अपने बुजुर्ग और हिन्दुस्तानी कौमियत के सबसे बड़े तवारिखी रहनुमा महाराजा विक्रमादित्यजी की बातो की ताईद करता हूॅ। हिन्दुस्नान की हुकूमत मे मेरा भी उसूल यही रहा। गो कि मेरे हम मजहब सलाहकारो ने मेरे दिल मे बार-बार यही ख्याल पैदा करने की कोशिश की कि हम मुसलमान गैर-मजहब और गैर मुल्क के हैं। हमे उन्हीं की बेहतरी की खातिर हिन्दुस्तान पर हुकूमत करनी है। मगर मैने मादरे-हिन्द को ही अपना वतन समझकर उसकी कौमियत को मजबूत करने के लिये

सभी कुछ किया। लड़ाइयाँ लड़ी, सुलह की, दीन-ए-एलाही मजहब चलाया, हिन्दू-मुस्लिम शादी को तरजीह दी। मगर अफसोस, मेरे बाद यह कड़ी ढीली होती-होती एकदम टूट गयी, और देश गुलाम हो गया। यह एक अजीब राज है कि यह दुनियाई-वहिश्त जिस किसी गैर मुल्कवालों के कब्जे में रहा, दूसरे गैर-मुल्कवालों ने भी उसे चैन न लेने दिया। (हरे-हरे की आवाज) हिन्दू—बादशाह के पहले की तवारीख मेरे सामने नहीं है कि शक, हूण, और दूसरे विदेशियों ने—हिन्दुस्तान पर कब्जा जमाने के लिये कितनी खून की नदियाँ बहायीं। अपने हम-मजहबों के बारे में इतना जानता हूँ कि पठान जब यहाँ बादशाह हुए, तो उनके मुख्तलिफ फिरकों में भी मार-काट मचती रही। मुगलों के जीतने पर उनमें भी खूँरेजियाँ मचीं। भाई भाई का, बेटा बाप का दुश्मन बन गया। इसके बाद पोर्तुगीज, फ्रासीसी, डच किस्मत आजमाते रहे। आज अँग्रेजों का सितारा बुलन्दी पर है, कल की बात खुदा जाने। कौन कह सकता है कि इन दिनों जो दुनिया में कयामत बरपा किया जा रहा है हिन्दुस्तान की गुलामी भी उसकी एक वजह नहीं है?

विष्णु—अब गोस्वामी तुलसीदासजी कुछ निवेदन करें।

तुलसी—(शान्त भाव से उठकर)

जे अधर्म बस युद्ध कराहीं।
नरकहुँ महँ तिनि ठौर न पाहीं॥

जे परजा पीड़क अभिमानी।
करत अनेक स्वार्थ मनमानी॥
रावण सरिस वीर विज्ञानी।
ताकी सुनियत करुण कहानी॥
तिन सासक गति कबहुँ न पाई।
जनम जनम के पुन्य नसाई॥

विष्णु—कार्लमार्क्स साहब!

यम—महाराज, उन्होने और लेनिनजी ने कहा कि पूँजी-पतियो के खुदा और देवताओ के दरबार मे हम न आयेंगे। साथ ही यह भी कि आजकल की दुनियावी लड़ाई पूँजीपतियो की ही चलायी हुई है और धर्म भगवान-स्वर्ग का ढकोसला उसमे मदद करता है। इसलिये अच्छा है कि यहाँ भी 'बम्बार्ड' हो, जिससे स्वर्ग-नर्क का नाटक ही खत्म हो जाये।

विष्णु—(मुस्कराकर) हूँ! अच्छा—राष्ट्रपति विलसन महोदय,—

विलसन—मेन पाइन्ट्स आव वार पर किंग विक्रमा और अकबर द ग्रेटने शॉर्ट मे कह दिया है। मै सिर्फ इतना ही कहना चाहता हूँ कि लास्ट ग्रेट वार खत्म कराने मे मेरा बड़ा हाथ रहा। लेकिन अफसोस है कि मेरी शर्तो पर जिस लीग-आव-नेशन्स को कायम किया गया, इम्पिरियलिज्म के हथकंडो ने उसे बेकार कर दिया; दुनिया मे फिर वही रवैया आ धमका। और फिर यह नया वार छिड़ा है, अब भी मेरा दावा है कि मेरी शर्तो के

डिफेक्ट दूर करके उनके जरिये लड़ाई की आग हमेशा के लिए बुझायी जा सकती है।

विष्णु—देवी एनीबेसेन्ट

एनीबेसेन्ट—मैं अपने जातिभाइयों से यह कहना चाहती हूँ कि अधिक नहीं तो कम से कम 'होमरूल' भी इस समय भारतीयों को दे दें तो वे निश्चय युद्ध में विजयी हो सकते हैं। दूसरी बात यह कहना चाहती हूँ कि पहचान में भूल भले ही हो, किन्तु 'पूर्व के तारे' का प्रगट होना ध्रुव है।

विष्णु—कबीरदासजी कुछ कहें।

कबीर—बन्दे, तू ही वैरी अपना।
लोभ, स्वार्थ मन कपट भरा है,
ऊपर जग हित रटना॥
धर्म, सचाई की दे दुहाई,
पर को—निज को ठगना॥
एक पिता के सब जाये हैं,
फिर कैसे नहिं पटना।
कहै कबीर सुनो रे भाई,
आपुसहि मे निबटना।
बन्दे तूही वैरी अपना॥

विष्णु—लोकमान्य तिलक जी,

तिलक—अत्यन्त क्लेश की बात है कि सदियो की पराधीनता

ने भारत को इस प्रकार जकड रखा है कि जीवन पर, जीवनोपयोगी अन्न और वस्त्र पर भी आज उसका अधिकार नहीं है। इसीलिये मैंने 'स्वराज भारतीयो का जन्म सिद्ध अधिकार है' आन्दोलन चलाया था। क्योंकि मेरा विश्वास है कि स्वतन्त्र भारत ही संसार मे स्थायी शान्ति स्थापित कर सकता है। मैंने उस समय अनुभव किया कि संसार के बलवान राष्ट्र भाँति-भाँति के हथकण्डो से दुर्बल राष्ट्रो का दोहन करके मोटे होते जा रहे हैं और चीन, भारत, अफ्रिका, तथा एशिया के अनेक द्वीपो एवम् भू खण्डों को अपने साम्राज्य-विस्तार तथा व्यवसाय की मडी बनाकर, आपस मे एक-दूसरे से बढ जाने की प्रतिद्वन्द्विता अनिवार्य कर रहे हैं। पिछला और वर्तमान विश्वयुद्ध इसीका परिणाम है—

सनयातसेन—आपने मेरे हृदय की बात कह दी, मेरा देश इन चालबाजियों का काफी शिकार रहा।

जगलूल पाशा—और मेरा मुल्क भी।

विष्णु—तिलकजी के बाद आप लोग ही बोलेगे।

जगलूल—तिलक भाई की तकरीर ही काफी है।

सनयात—अब हम लोगों को और कुछ कहने की जरूरत नहीं।

विष्णु—(तिलकजी से) आगे कहिये।

तिलक—पिछला विश्वयुद्ध जिस प्रकार छिड़ा और जैसे उसका अन्त हुआ, उसीमे वर्तमान विश्वयुद्ध का बीज भी था। और इसका अन्त भी यदि इसी प्रकार हुआ तो तीसरे विश्वयुद्ध

की भूमिका तैयार होगी। जब तक बलहीन देशों को दबाकर बलवान बनने की होड़ राष्ट्रों में होती रहेगी, विश्वयुद्ध का सिल-सिला इसी प्रकार रहेगा।

स्वयं—महाराज, शान्ति का कुछ व्यावहारिक उपाय भी तो बताइये।

तिलक—जैसा कि मैंने कहा है, भारत शीघ्र स्वतंत्र हो, और लड़ाके राष्ट्र उस पर मध्यस्थता का भार सौंप दें, तो विश्वशान्ति की समस्या स्थायी रूप से हल हो जायगी।

विष्णु—कविराज भूषण कुछ छंद पढ़ें।

भूषण—(मूंछोंपर ताव देकर)

साच्यो खट्मंडल भूमंडल से चहूँ ओर,
मेदिनी दरकि उठी, नभ घहरानो है।
मथ्यो जात सिंधु पुनि, पर्वत प्रपीड़ित है,
नदी, नद, बन, बीथी गर्ने को ठिकानो है।
'भूषण' भनत भवसिन्धु ही भयकि उठ्यो,
जीव, जन्तु, जड़, चर, अचर नसानो है।
वोही ज्वाल मृत्युलोक-महाकाल आज इतै,
सरग में सायरन बन घिघियानो है।

विष्णु—(इन्द्र से) देवराजजी, अब आप भी कुछ कहिये।

इन्द्र—मैं क्या कहूँ ? हम देवतागण तो आपके आज्ञाकारी हैं। किन्तु फिर भी इच्छा होती है कि देव-सेना लेकर विश्वयुद्ध में कूद पड़ूँ।

विष्णु—किसकी सहायता के लिए ?

इन्द्र—जो धर्मपक्ष पर है।

विष्णु—(मुस्कुराकर) परन्तु, सभी युद्ध-लिप्त-राष्ट्र धर्म, ईश्वर, मानवता और विश्व-सुरक्षा की दुहाई दे रहे है। जो नास्तिक थे, वह भी अब आस्तिक बन गये है। तब हम किसे धर्म-पक्ष पर और किसे अधर्म पक्ष पर समझे ?

इन्द्र—हाँ, यह तो...यह तो ठीक है; परन्तु...परन्तु...

स्वयं०—परन्तु-वरन्तु कुछ नहीं महाराज, यही बदला चुकाने का अवसर है। जब-जब जरूरत हुई है, भारत ने देवलोक की सहायता की है। इस समय आप उसकी सहायता अवश्यमेव कीजिये।

विष्णु—भारत मे अनेक व्यक्ति इच्छा या अनिच्छा से युद्ध मे सम्मिलित हैं, और अनेक युद्ध से अलग हैं। तब हम किसकी सहायता करें ?

स्वय०—(कुछ सोचकर) देव, जो युद्ध नहीं चाहते।

विष्णु—जिनका सिद्धान्त ही युद्ध से अलग रहने का है, युद्ध द्वारा उनकी सहायता करना क्या उचित होगा ?

स्वयं०—भारतवासी सिद्धान्त की रक्षा से उद्धार ज्यादा पसन्द करेंगे। युद्ध से, अवतार लेकर, सुदर्शन चक्र चलाकर, चाहे जिस प्रकार हो, कृपा कर आप भारत का उद्धार करें।

विष्णु - केवल भारत का ?

स्वर्ग०—हाँ, केवल भारत का; नहीं-नहीं विश्व का भी।... नहीं-नहीं भगवन्, केवल भारत का ही उद्धार कीजिये।

विष्णु—(हँसकर) होगा, भारत का उद्धार होगा; परन्तु पूर्ण प्रायश्चित के बाद। अनार्यों को घृणापात्र और दास बनाकर, उन-पर मनमानी करके आज वह स्वयं अनार्य और दास बनकर प्राय-श्चित्त पूर्ण कर रहा है। चिन्ता न कीजिये, थोड़ा ही विलम्ब है। गुरुदेव बृहस्पतिजी ने कहा है कि यह प्राकृतिक युद्ध ईश्वरेच्छा-प्रेरित नहीं है। परन्तु, ईश्वर के अतिरिक्त यह कौन ठीक ठीक बता सकता है? जो हुआ होगा, उसी का परिणाम अब हो रहा है। और जो रहा है, उसीमें होनेवाला भी होता जा रहा है। यह निश्चित नियम अनादिकाल से चला आ रहा है और अनादिकाल तक चलता रहेगा। ईश्वर की इच्छा या प्रेरणा उससे अलग नहीं है। विश्व-वेदना की कराह जो सायरन बनकर आज यहाँ सुनाई दी है, पहले भी जब-जब विश्व की ऐसी ही दुर्दशा हुई है,—दूसरे रूपों में अपनी करुण पुकार सुना चुकी है। और उसका निवारण ईश्वर के उसी अटल नियम के अनुसार हुआ है। आज भी विश्व उसी प्रकार शान्ति की प्रसव-वेदना सहन कर रहा है। शीघ्र ही सारी चिन्ताएँ दूर होंगी।

———

पब्लिसिटी !

[आजकल आत्म-विज्ञापन-पब्लिसीटी का युग है। कुछ युवक बेचारे इसी सकामक-प्रेरणा से हरिजनों के पास जाते हैं। उनकी बातें सुनिये और गुनिये। 'समाज सेवक' कलकत्ता, में प्रकाशित।]

[हरिजनों की एक बस्ती। ५-७ टूटे फूटे झोपड़े। ८-१०
हरिजन ताडी पीते नाच-गा रहे हैं।]

मोरे चोलऊ हो, जगवा में रहबऽदिनवाँ चार।
खालऽपीलऽमौज उड़ालऽ, करलऽहँस ब्योहार,
का जानी कब नेवता आई, जइबऽ टाँग पसार।
धोबी हमरा कपड़ा न धोए, नाउ न काटे बार,
रोग-बीमारी मे कोउ न देखे, अइसन विपत के मार। मोरे०
सड़ल-गलल जूठा हम खाईं, रहे के घर नौ द्वार;
गन्दा-गड़हा के पानी पिअइले, है ई नरकवा के मार। मोरे०
छाया पड़े, भिनसर मुँह देखे, दें सब गाली हजार;
कुत्ता-बिलाई से नीचा गिनाइले, येही है गतिया हमार। मोरे०
भीतर अन्न, न तन पर बस्तर, ना कोई देखन हार;
यही सब दुख से ताड़ी पिअइले, ना हम चोर-लबार। मोरे०

[४-५ सुधारक नवयुवक आते हैं। एक के हाथ मे कैमरा है। हरिजन चुप हो जाते हैं। दोनों दलो में बातें होती हैं—]

पहला नव०—भाइयो, नशा पैसे बरबाद करता है और अकल भी।

पहला हरि०—बाबू, नशा तो बड़े लोग करते हैं। हम लोग तो दुख भुलाने के लिये घिनौने जीवन से कुछ देर मन हटाने के लिये दवा पीते हैं। और न हमारे पास पैसे हैं—न अकल ही, जो बरबाद होंगे।

[नवयुवक एक-दूसरे को देखते हैं]

२ रा नव०—नशा के साथ अगर गंदगी भी छोड़ दो, तो समाज तुम्हे अपनाने लगेगा।

२ रा हरि०—गन्दगी ! (दुख की मुस्कुराहट से) मालिक, गन्दगी उसे अखरती है, जो पवित्र हो। मैला वही होता है, जो साफ-सुथरा हो। यहाँ तो खुद गन्दे हैं–मैले हैं। गन्दगी हम से अलग ही कहाँ है!

(नवयुवक आपस मे संकेत करते है।)

३ रा नव०—भाई, तुम लोगो के लिये उस गाँव मे पाठशाला, अस्पताल, मन्दिर, कुँआ वगैरह खोल दिये गये है।

४ था नव०—अपने बच्चो को पढ़ने के लिये भेजो, और खुद भी आओ। कोई बीमार हो, उसकी दवा कराओ और, मन्दिर मे—

१ ला हरि०—महाराज, अगर हम लोग वहाँ जायेंगे तो आपका सब इन्तजाम छुला जायगा। ऊँची जातिवाला वहाँ न आएगा—

२ रा हरि०—और हम लोगो की पढ़ाई या सिखावन तो हम-लोगो का काम है—बड़े लोगो के समाज की गन्दगी साफ़ करना। इससे किसी तरह एक शाम आधा पेट चलता है। पढ़ने लगे, तो वह भी बन्द हो जाय।

३ रा हरि०—बाबू, यह हम लोगो के अगले जन्म का पाप है कि हम जानवर न हुए। मानुस-तन पा के हमारी दशा चमगादड़

से भी गई-बीती है। न इधर के, न उधर के। आदमी में शरण नहीं, जानवर में गिनती नहीं।

(युवक आपस में देखते हैं)

१ ला नव०—कम से कम नहा भी लिया करो, तो मन्दिर में तुम लोगों का प्रवेश—

१ ला हरि०—इन चीथड़ों के सिवा है क्या, जो नहाकर पहनेंगे?

२ रा हरि०—अच्छा बाबू, यह तो कहिये, कि जो लोग नहा-धोकर—पवित्र बनकर, मन्दिर में भगवान का दर्शन करते हैं, वह फिर पाप नहीं करते होंगे?

२ रा नव०—नहीं……करेंगे कैसे? करना ही नहीं चाहिये।

३ रा हरि०—'करेंगे कैसे?' 'करना ही नहीं चाहिए'—यह तो हम लोग भी जानते हैं। यह कहिये—करते हैं या नहीं?

(नवयुवक आपस में एक-दूसरे का मुँह देखते हैं)

१ ला हरिजन—खैर, सुनिये। अगर भगवान कहीं हैं, तो जिस हालत में उन्होंने हम लोगों को रख छोड़ा है, उसी में दर्शन देंगे।

४ था हरिजन—अरे छोड़ो इन सब झंझटों को, हमारा भगवान तो (ताड़ी भरे चुक्कड़ हाथ में उठाकर) यह है।

१ ला नव०—अच्छा, इस समय तो हम लोग जाते हैं फिर कभी आयेंगे। अब ज़रा तुम लोग सीधे—इस तरह—खड़े हो जाओ। फोटू ली जायगी।

पहला हरि०—ओ...अखबार में छपाने के लिये।

दूसरा हरि०—कि नेता बाबू लोग हरिजनों की सेवा करने गये थे।

तीसरा हरि०—फिर तो आप लोगो की खूब ही तारीफ़ होगी।

चौथा हरि०—अच्छा, तो ले ही लीजिए फोटो, क्योंकि इतना भी न होने से आप लोग दुखी होंगे। लेकिन कुछ हम लोगो की ख़ातिरदारी भी कबूल कीजिये। ताड़ का मीठा रस बड़ा ही फ़ायदेमन्द होता है। सुना है बडे-बड़े नेताओं के चेले भी पीने लगे है।

१ ला नं०—हाँ हाँ, नीरा, मगर ....

२ रा हरि०—बहुत सफाई से लाता हूँ; घबराइए नहीं। जिस बर्तन में रस चू रहा है, उसमे हम लोग मुंह नहीं लगाते। वह देखिये; उतारा जा रहा है।

[एक हरिजन रस लाता है। युवक असमंजस में पड़े से दिखायी देते हैं।]

पहला हरि०—क्यो बाबू, इसी हौसले पर हम लोगो का उद्धार करने चले है आप ?

[जोश मे आकर पहला नवयुवक जैसे ही पीने लगता है कि युवको के ४,५ गार्जियन झट से आते हैं और 'पापी' 'अछूत' 'भ्रष्ट' आदि कुवाक्य कहते हुए युवको को मारते-पीटते ले जाते हैं। हरिजन हँसते हुए फिर गाने-बजाने लगते हैं।]

—:*:—

ब्लैक-मार्केट

यह वर्तमान समय की जीती-जागती-बोलती तसवीर है। जन-आन्दोलन और इस (ब्लैक मार्केट) से क्या सम्बन्ध है, रहस्य-हास्य के व्याज से गुदगुदाकर बताया गया है। और भी इसमें बहुत-कुछ है।

[१९५० का पतझड़। ११। बजे रात। इस्टसवपुर का एक बढ़िया बागीचा। फाटक भीतर से बन्द, ४ बन्दूकधारी सन्तरी चौकसी मे चक्कर काटते हुए। बीच बंगले के भी सभी द्वार-खिड़की बन्द। उसके अन्दर अंग्रेजी ढंग पर सजे कमरे मे बिजली का प्रकाश, एक फैन भी हौले-हौले चलता हुआ। संगमरमर के अंडेनुमा एक बड़े टेबुल की किनारियों से लगी कुर्सियो पर भिन्न-भिन्न वेप-भूपावाले १२ व्यक्ति बैठे हुए। शायद बातचीत का सिलसिला देर से चालू है।]

क्रोकोडाइलसन—मुझे खुशी है कि इतनी देर की बातचीत के बाद इस नतीजे पर पहुँच गये कि हम सब का एक ही कामन-एनिमी-शत्रु है, कांग्रेस, और चुनाव मे, चाहे जैसे भी हो उसे डिफीट देना है। अब हमे इसके उपाय पर विचार करना चाहिये।

कामरेड पिलपिल—उपाय तो शुरू कर दिया गया है मिस्टर! कम्युनिज्म का भयंकर बवंडर आज सारे हिन्द-यूनियन को झकझोर रहा है। कुछ ही घण्टे मे उसका एक नन्हा शिगूफ़ा फुटकर रंग लानेवाला है।

स्वामी घुरघुरा शास्त्री—परन्तु धर्म, जाति, संस्कृति और साम्प्रदायिक—उभाड़ के कारण ही आज जनसाधारण मे कांग्रेस-सरकार के प्रति विद्रोह विस्तार है। उसका सबसे विराट बल गांधी को भी समाप्त कर दिया गया। अतः इसी कार्यपद्धति को व्यापक बनाना अत्यावश्यक है।

मुन्शी हरस्वरूपलाल—देखिये साहब, मैं अरसे से कांग्रेसी रहा हूँ। त्याग की रेकर्ड ही तोड़ दी मैंने। अनेक बार पुलिस के लाठी-धक्के सहे; कई बार हाजत जाकर भी लौट आया। एक दफा जेल भी गया, मगर कमबख्त घरवालों के माफी माँग लेने के कारण...

कामरेड पिलपिल—अपना बयान दीजिए, सब्जेक्ट पर आइए।

मुन्शी०—देखिए, बीच में ही न टोकिए।

कोको०—येस येस, गो ऑन, गो ऑन।

मुन्शी०—हाँ तो देखिए, मैं अभी तक खद्दर पहनता हूँ।

कामरेड पि०—नकली—मिल के सूत का।

मुन्शी०—देखिए फिर आपने डिस्टर्ब किया (बिगड़कर) क्या समझा है आपने मुझे!

कोको०—दिस इज वेरी बैड, मिस्टर पिलपिल, इन्हें बात पूरी करने दीजिये।

मुन्शी०—हाँ, तो अंत में कांग्रेसी-लीडरों से तंग आकर अब मैं सोशलिस्ट हो रहा हूँ। कम्युनिस्टों का साथ भी देता हूँ। हिन्दू होने के नाते हिन्दूराज्य-स्थापना का समर्थक हूँ ही। राष्ट्रीय सेवक संघ की भी काफी मदद की है मैंने। किसान सभा और मजदूर मण्डल......

कोको०—शोर्ट में मिस्टर, मुखतसर में कहिए।

मुंशी०—थोडा विस्तार से कहने का मतलब यह है कि मेरा अनुभव देश की भलाई के बारे मे—हर दृष्टिकोण से विराट् व्यापक है। इसलिये दावे के साथ कहता हूँ कि इस समय जनता मे जो क्षोभ फैल रहा है, उसका मूल कारण है—सोशलिस्ट नेताओ द्वारा की गई काग्रेस की कटु आलोचना। क्योकि यह भी काग्रेस नेता ही समझे जाते हैं और इनका प्रभाव . ...।

वगस्यानद सरस्वती—(चिढ़कर) यह आप लोगो की कोरी बकवास हैं। क्या कम्युनिस्ट, हिन्दू साम्प्रदायिक, और साशलिस्ट के अलावा मुस्लिमलीग का रोपा हुआ विषवृक्ष, फारवर्ड ब्लाक, विद्यार्थी संघ, किसान सभा, मजदूर यूनियन, अकाली सिख सभा, आदिवासियो—जमींदारो—जागीरदारो का आन्दोलन भारतव्यापी कई विशेष प्रान्तनिवासियो की संस्कार मे मिली हुई प्रान्तीयता, संस्कृतनिष्ठ हिन्दी-हिमायतीय— इन सबका कुछ भी प्रभाव इस व्यापक जन-क्षोभ पर नहीं है? मेरा ख्याल है—और सही है कि सभी आन्दोलक दलो ने जाने या अजाने, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष, द्वेष या सुधार भाव से, काग्रेस-सरकार की नींव पर ही चोटें पहुँचाई हैं, और अब भी पहुँचा रहे हैं। जनता भी देखती है कि सभी दल विद्रोही हो रहे हैं तो उसका भी छान-पगहा तुड़ाना स्वाभाविक ही है। मेरा सम्बन्ध अधिकतर किसान-मजदूर संस्थाओ से ही रहा है। और सच पूछिए तो—वास्तविक जनता का

प्रतिनिधित्व यही संस्थाएँ करती है। अतएव इन्हीं का बल बढाने का निश्चय आज किया जाय।

मिस्टर दस्तूरचंद—लेकिन बहुत से सरकारी नौकरों को याद क्यों दे रहे हैं सरस्वती जी—औ आइ०मसौरी स्वामी जी? यही तो असली कल-पुर्जे हैं, सरकारी भ्रष्टाचार के पक्के और जानदार सबूत हैं। हर सरकारी महकमे में इनका बोलबाला है। आप लोग बाहर काम करते हैं, यह भीतर से ही घर खोद रहे हैं। इसलिये मेरा नम्रतापूर्ण—हलका सा—दावा है कि वर्तमान जन-विद्रोह में हम लोगों का—यानी इनका भी हाथ है।

बगलोल हुसैन—मैं भी इसकी ताईद करता हूँ। भड़कने-भड़कानेवाली बातें सुन-सुन कर शरीफ़ कारिन्दों में भी छूत लग जाती है। भला मिनिस्टरों और कांग्रेस-नेताओं तक में करप्शन की तेज फिनाइल सूँघ कर कौन भलामानुस बहती गंगा में डुबकी लगाना न चाहेगा? हमारे बहुत से हमक़ौम भाई जो वक्त की मार से चुप्पी मारे हुए थे, सबका साथ देने को तैयार हैं।

पत्रकारानन्द—आप लोग उन्हें क्यों भूल रहे हैं, जिनके द्वारा असल काम होता है? बहुत से युगदेव दूत-गरीब पत्रकारों, कार्टूनिस्टों और रिपोर्टरों को क्यों इस काम का महत्त्व देना नहीं चाहते? जनस्वतन्त्रता का नाजायज नहीं—जायज फायदा उठाकर, दबंगता के साथ यही तो जन-क्षोभ का खुला प्रचार करते हैं। यही.....।

कामरेड पिल०—माफ़ कीजियेगा महाशय। आज के बहुतेरे भारतीय पत्रकार—पत्राध्यक्ष या सम्पादक—किसी न किसी राजनीतिक गुटबंदी के नेता है या अनुयायी। इनका मँजा हुआ अभ्यास घूमघुमौव्वे शब्दाडम्बर से सभ्य-गाली देने का रहा है। पहले जियादतर अगरेजो की खबर ली जाती थी। अब भी हथियार वही है, सिर्फ निशाना बदल गया है। इसके सिवा, इनके गोबरकुण्डे-दिमागशरीफ़ मे और कुछ है भी तो नहीं। जनक्षोभ पैदा करते हैं हम लोग, ये पत्रकार तो उसे बेचकर अपना पेट पालते है।

पत्र का० –(उठकर) आप बहुत बहक रहे हैं, इतने दुच्चेपन पर न उतरिये मिस्टर कामरेड !

काम०—(उठकर) खबरदार, आप दुच्चेपन को वापस लीजिये।

मुंशी—जी हाँ पत्रकारानन्दजी, आपका आक्षेप तीव्र हो गया।

पत्र कारा०— मुझे अफ़सोस है। [दोनो बैठते है]

मोटेलाल खुराफ़ातिया—जिस प्रकार आप सबने मान लिया है कि हम सबका एक ही दुश्मन है, उसी तरह यह भी कि जनता मे सरकार के प्रति असंतोष-वृद्धि हो रही है। इसकी बड़ाई अपने अपने दल-स्वार्थ से आप लोग बखान रहे हैं। लेकिन जरा गहराई से सोचिए। सरकार मे भ्रष्टाचार का कारण क्या

है ? घूसखोरी। जनता को क्या शिकायत है ? अन्न वस्त्र तथा अन्य जीवनोपयोगी वस्तुओं की महँगी। अब देखिए कि घूस-खोरी और महँगी का कारण क्या है ? वही, जो ब्लैक-मार्केटिंग के नाम से बदनाम हैं।

काम०—पूँजीपतियों की ग़द्दारी और मक्कारी से भरा रोजगार।

मोटे०—ठंढे मन से काम लीजिये कामरेड। ग्राहक को संतोष दिलाकर, दो पैसे पैदा करना, हर व्यापारी, सदा से करता आया है। इस 'आर्ट' को आप चाहें जिस नाम से कोसें, मगर है यह स्वाभाविक। देश जब विश्व-युद्ध से पीड़ित हो या किसी दैवी विपत्ति में फंसा हो, तो जीवन-निर्वाह की चीजों का मिलना असंभव की भाँति महा-कठिन हो जाता है। परिश्रमी व्यापारी पैसों का पानी बहाकर—जान पर खेल कर, उन्हें मुहैया करता है। फिर, अगर औसत से, मुनासिबाना कुछ अधिक दर पर बेचता है, तो इसमें अन्याय क्या है ?

कोको०—बिल्कुल नहीं, एकदम मुनासिब।

घुरघुरा०—सत्य वचन, व्यापारे वसते लक्ष्मीः।

कामरेड०—असल तो यह है मिस्टर कोकोबाडलसन, यह पेड़ आप ही लोगों का लगाया हुआ है। ब्लैकमार्केट का सीधा अर्थ है—कालाबाजार। मतलब कालों का बाजार। और इसकी बुनि-याद तब पड़ी थी, जब गोरों ने कालों की मार्केटिंग—खरीद-

बिक्री शुरू की थी—अर्थात् काले देशों को अपना बाज़ार बनाना-आरम्भ किया था।

घुरघुरा०—नहीं, नही, काला शब्द अत्यन्त प्राचीन है—सनातन है। यह रंगों मे सर्वश्रेष्ठ है। काले विष्णु हैं-राम हैं-कृष्ण है। काला आकाश, काले-काले बादल, काले अलिवृन्द, सस्य-श्यामला—

कामरेड०—वाह, क्या कहने हैं शास्त्री जी के। अंधकार काला, विष काला, सुना है यमराज भी काले हैं। यही तो है ऐसे पूँजीपतियो का असल रंग।

मोटे०—आपको तो साहब, पूँजीपति शब्द से ही चिढ़ है। एक ही लाठी से आप सब को हाँकते हैं। वास्तव मे आपके लक्ष्य होने चाहिये वे पूँजीपति जो कांग्रेस-सरकार के समर्थक और उसके सहयोग से मजदूरो को चूसनेवाले हैं। हम लोग तो मज़दूरो को हिस्सेदार समझते हैं, आपके, और शास्त्री जी के दल के गुप्त सहायक है।

घुरघुरा०—इसमे क्या संदेह है सेठ जी। जब भारत पर भगवा झंडा लहराने लगेगा, तभी भामाशाह की तरह आपकी सहायता का मूल्य आँका जायेगा। हमारे छद्म-वेषी समाचार-पत्र, और संस्थाएँ, आप ही लोगो के बल पर तो चलती हैं।

कामरेड०—हमारे दल से, आपकी सहायता का क्या संबंध?

मोटे०—(मुस्कुराकर) चौपटानन्द, हडपलाल, भकोल सिह, किरापट तिवारी को आप जानते है?

कामरेड०—यह लीजिये, यही तो हमारे अर्थ-वीर हैं। किन-किन मुसीबतों से यह बेचारे रुपये-पैसे की जोगाड़ करते हैं, हमें भी नहीं मालूम।

मोटे०—(हँस कर) मालूम हो भी नहीं सकता। इस बारे में हमारा प्रबन्ध ही ऐसा है। हमारे सरीखे अनेक व्यापारियों ने बहुत बड़ा फंड इकट्ठा करके, कांग्रेस-विरोधी संस्थाओं की सहायता का कार्यक्रम इस प्रकार बना रखा है कि उनका कहीं कुछ खुला हिसाब नहीं है। आपके बेचारों वीरों को भी पता नहीं है।

कामरेड०—खैर, यह माना कि आर्थिक सहायता दे-दिलाकर आप लोग अपने विराट पापों का लघु प्रायश्चित्त कर लेते हैं, किन्तु ब्लैकमार्केट में हमारे किसान-मजदूर ही जियादा पीसे, जाते हैं।

मोटे०—इस बारे में भी भ्रम निवारण कर लीजिये। ब्लैक-मार्केट की बाजार-पद्धति में, सच पूछिये तो अप्रत्यक्ष रूप से समाजवाद और साम्यवाद का रहस्य छिपा है।

वैषम्या०—अच्छा जी !! ज़रा सुनें तो।—

मोटे०—हाँ सुनिये। चाहे जिस प्रकार का माल हो, रेल से-जहाज से—प्लेन से—ट्रक-मोटर से—घोड़े-बैल से—नाव से या पैदल, इधर-उधर भेजा जाता है। इनसे सम्बन्धित कई प्रकार के कर्मचारियों को मुँहमाँगा पारिश्रमिक अवश्य देना

पड़ता है। इस प्रकार मुनाफे के १२-१४ आने इन साझेदारों में वितरण कर, हम कई भागीदारों के हिस्से में केवल दो या चार आने ही पड़ते हैं। अब आप ही ईमान से—नहीं-नहीं, ईमान छोड़ कर बताइये, हम लोग एक सच्चे मानी में समाजवादी या साम्यवादी हैं या नहीं ?

क्रोकोडाइलसन—हम लोग कितने ही यूरोपियन, यहाँ रोजगार या सर्विस में हैं। नाता निहायत गहरा रहा है। हमलोगों ने इस देश को सँवारा है, सुधारा है, और इस लायक बनाया है। आज जो कुछ यहाँ हो रहा है, उससे हम लोग भी अलग नहीं हैं।

कामरेड पिल०—खुद सुलगाकर जमा लो भला कहीं दूर रह सकती है ?

क्रोको०—हाट ?

कामरेड पिल०—यानी आप ठीक कह रहे रहे हैं।

क्रोको०—थैंक्यू। हाँ तो मैं यह कह रहा था कि हम लोगों को भी दिलचस्पी आप लोगों की इस मौजूदा हलचल में है। आप सब ने अपने अपने पार्ट अदा करने की बड़ाई हाँकी। हम लोगों के भी कभी दून की हाँकने का मौका आयेगा। पर कब ? जब आप और हम कामयाब होंगे। खुदा वह दिन जल्द दिखाए। (हाथघड़ी देख कर) भाइयो, तीन घंटे से हम इस कालकोठरी में बन्द हैं। दो घंटे बाद, शायद सबके दम न घुटने लगा

जायँ। इसलिये असल सबजेक्ट पर आकर एक फैसला कर लेना चाहिये। मेरा सुझाव है किसी एक मजबूत पार्टी को हम लोग चुन लें और उसी का साथ दें। अब सवाल है कि किसे चुनें?

कामरेड०—नेचरली कम्युनिस्ट पार्टी को।

घुरघुरा०—नहीं नहीं, भगवा झण्डा-समर्थक दल को।

मुंशी०—सोशलिस्ट पार्टी को।

सुन्दर बोस—फार्वर्डब्लाक को।

वैपन्यानन्द०—किसान-मजदूर संघ ही इसका अधिकारी है।

कोको०—(नम्रता से) कोई एक को चुन लीजिये न। [उपरोक्त दल उसी प्रकार अपने कथन-जोर से दोहराते हैं। हल्ला सा मच जाता है]

कोको०—देखिए, इसी तरह अगर आपस में ही रगड़ होती रही, तो हमारा जबरदस्त दुश्मन विलाशक कामयाब हो जायगा।

कामरेड०—हम उसे कुचल देंगे।

घुरघुरा०—हम उसका नाश कर देंगे।

मुंशी०—हम केवल उसकी कमर तोड़कर छोड़ देंगे—मतलब यह कि—हिंसा नहीं करेंगे।

वैपन्या०—हम उससे राज्य छीन, उसके अधिकारियों से खेती और मजदूरी का काम लेंगे।

(फिर हल्ला मचता है।)

मोटे०—शान्त हो जाइए, शान्ति से काम लीजिये। देखिए, केवल इतना कहने से ही कि 'हम यह करेंगे, वह करेंगे', काम नहीं चलेगा। कुछ त्याग करने से और कुछ सचाई से काम करने से ही सफलता मिलेगी। अगर आपस में समझौता करके एक दल नहीं चुन सकते, तो मेरा एक प्रस्ताव है।

कामरेड०—कहिए।

घुरघुरा०—आपका प्रस्ताव निश्चय ही व्यावहारिक होगा, अवश्य कहिए।

मो०—कांग्रेस के जितने विरोधी दल हैं, सब अपने-अपने उम्मीदवार खड़े करें। और हम लोग, अपने-अपने दृष्टिकोण से उनको विजयी बनाने की चेष्टा करें।

(सब की विचार-मुद्राएँ भिन्न-भिन्न और दर्शनीय। आधा मिनिट चुप—वातावरण।)

कामरेड०—लेकिन साथी, इससे यह भी तो हो सकता है कि अलग-अलग उम्मीदवार खड़े करने से, हम सबके वोट बँट जायें, और अकेला होने से दुश्मन-दल बाज़ी ले जाय।

(फिर सब सोचने लगते हैं—क्षण भर चुप्पी)

मोटे०—परन्तु यह भी तो हो सकता है कि अलग-अलग दलों में बँट जाने पर कांग्रेस को भी इतने वोट न मिलें कि वह अपनी सरकार बना सके।

[फिर सब एक-दूसरे का मुँह निहारते हैं]

कोको०—तब, ऐसी हालत में, आप बहुमत से एकदली सरकार बना सकते हैं। इस काम में अगर आप पसन्द करें तो हम—बृटिश लोग, हिन्द-यूनियन के सच्चे शुभचिंतक की हैसियत से, उस नेक काम में मदद करेंगे।

कामरेड०—(क्षण भर सोचकर व्यंग से हँस कर) वाह उस्ताद, क्या दूरकी कौड़ी लाई है तुमने। कुर्बान जाऊँ इस सूझ-बूझ के। (धीरे से) और इसी आड़ में इस दफ़ा विलायती चुनाव-चक्र में चर्चिल-पंथियों को बाजी बदने का मौका भी मिल सकता है!

[दरवाजे पर खट् खट् की तेज ध्वनि। सब चौंककर उधर देखते हैं। मोटेलाल जी सहमते-डरते से, द्वार खोलते हैं। भारी कोलाहल—भयंकर चीख-पुकार की आवाज। घबराया हुआ एक संतरी भीतर आकर द्वार बन्द कर लेता है।]

१ संतरी—करीब घंटे भर से लोगों में बेतरह लूट-मार मची हुई है।

कोको०—आर्म पुलिस या फौज नहीं आई?

१ संतरी—नहीं साहब, अभी तक नहीं।

कोको०—(जैसे सन्तोष हुआ हो) आखिर बगावत फैल ही गई।

१ संतरी—साहब, बगावत तो सरकार के खिलाफ़ प्रजा

करती है, लेकिन इसमे तो आपस ही में लोग एक-दूसरे को लूट रहे हैं—मार-काट मचा रहे हैं।

कामरेड०—गरीब--और मजदूर भी ?

१ सन्तरी—जी हाँ सब। जिसका जो चाहता है, लूट-खसाट कर रहा है।

घुरघुरा०—हिन्दू, मुसलमानो को नहीं लूट रहे ?

१ सन्तरी—कह तो दिया कि गरीब, अमीर या हिन्दू मुसलमान का कोई भेद ही नहीं है।

[फिर द्वार पर खट्-खट् की पहले से भी तेज आवाज] १ संतरी दरवाजा खोलता है, बेतरह घबराये हुए दूसरे सन्तरी के साथ लोहू-लुहान, फटे चिटो वस्त्रो मे तीन युवको का झटसे प्रवेश। कोलाहल और भी जोरो पर। द्वार बन्द कर लिया जाता है]

२ रा सन्तरी—यह साहब तीनो जवान चहारदीवारी तय कर अन्दर आ गये, गोली मारने के बजाय मै इन्हे यहाँ ले आया।

मोटे०—अच्छा किया, (युवको से) आप कौन हैं—और इस तरह....?

१ युवक—(ओठो को जीभ से तरकाता हुआ) क्या बताऊँ ? (पिलपिल को पहचान कर) अरे आप भी यहाँ हैं ?

कामरेड०—कौन ? आबजोश भाई ? आवो आवो (खुद खड़े होकर अपनी कुरसी पर बैठाता है) अब कोई हरज नहीं है।

यह बगीचा हमारे दोस्त मोटेलाल जी का है। मगर यह (दूसरे अन्य युवकों की ओर देखकर) कौन हैं ?

आवजोश—यह हैं रकटू आर्य महाशय, मशहूर कामरेड। (घुरघुरानन्द उसे अपनी कुरसी पर बैठाकर खड़े हो जाते हैं) और यह हैं हम लोगों के नेता कामरेड पलीता। (सब खड़े होकर नमस्कार करते हैं। मोटेलाल जी उन्हें अपनी कुरसी पर बैठाते हैं)

कामरेड पिल०—आज का प्रोग्राम कामयाब तो हुआ न ? हम लोग क़रीब-क़रीब आधी रात से ही—इसी मसले पर गौर कर रहे हैं।

कामरेड पलीता—(गिरे मन से) क्या कहूँ, इस मुल्क की तक़दीर ही ऐसी है। आज हमारा प्रोग्राम रेल, तार, डाक, बिजली और पानीघर, कल-कारखानों में तोड़ फोड़ करके सारे देश में उपद्रव मचा देने का था। शुरुआत के लिये यही कसबा चुना था.....जरा पानी: (मोटेलाल झट सुराही से शीशे के ग्लास में पानी लाते हैं। पीकर) पिछले छः महीने से लोगों को इस काम की ट्रेनिंग दी जा रही थी।

कोको०--हमें मालूम है।

मोटे०—हमने काफ़ी चंदा दिलवाया है।

कामरेड पिल०--तो, कार्य-क्रम में कुछ गड़बड़ी हो गयी, या लोगों ने साथ नहीं दिया ?

कामरेड पलीता—(धीरे से) सब हो गया। (दम लेकर) करीब आधे घंटे तक तो ठीक-ठीक चला। जैसा कि इशारा था, सिखाये लोगों ने गैर-कानूनी कार्रवाइयाँ शुरू कर दीं। दो जगह रेल की पटरी उखाड़ी, डेढ़ दर्जन टेलिग्राफ टेलिफोन के खम्बे गिराये, डाक-तार घर लूटे गये, और भी कई सरक
लूटे-जलाये गये। देखा-देखी औरों ने भी मौके से फायदा उठा लेना चाहा। कुछ लूट-खसोट भी चली। मगर खबर-पर-खबर देने पर भी पुलिस–फौज न आयी। हमारी चाल थी कि पुलिस फौज ज्यों ही कड़ाई पर उतर आयेगी तो यह चिनगारी सरकार के खिलाफ़ बगावत की आग भड़का देगी। फिर तो इस आग को हम सारे मुल्क में लगा देते। मगर अफ़सोस, न जाने सरकार को मालूम हो गया, या क्या हुआ कि आर्म पुलिस—फौज को कौन कहे, साधारण चौकीदार भी न आया। थोड़ी देर बाद यह आग खुद में ही जल उठी। ऐसी लूट-मार मची कि मानो आपस में ही जंग छिड़ गया हो। हम लोगों ने—सारे वर्करों ने—जी जान से रोकने की कोशिश की। मगर बरसाती महानदी का बहाव रोकने जैसा नामुमकिन हो गया। इसका नतीजा यह हुआ कि लोग अब बचने की तरकीबें करने लगे। गिरोह बना-बना कर लूट-मार करनेवालों को रोकना शुरू कर दिया। धीरे-धीरे, ऐसे बहुत से लोगों का बे-कायदे का संगठन हो गया। गैर-कानूनी कार्रवाइयाँ करने और लूट-खसोट मचाने

वालों को पकड़-पकड़ कर पीटना और पुलिस चौकी पहुँचाया जाने लगा। कुछ बाद में पुलिस-फौज आई। लोगों की धरपकड शुरू हो गयी। कई गोलियों से मरे, जख्मी हुए, बाकी पकड़ लिये गये या पकड़ लिये जायेंगे। क्योंकि आम जनता का सहयोग पुलिस को आपसे आप मिलने लगा है। हम लोग किसी तरह जान बचाकर भागे। (कुछ सोचकर) अब यह सरकार सैकड़ों साल के लिये मजबूत हो गई।

[द्वार पर खट्खटाहट की आवाज। मोटेलाल दरवाजा खोलते हैं, तीसरा सन्तरी घबराया हुआ अन्दर आकर]

३ संतरी—पुलिस-फौज ने चारो ओर से बाग घेर लिया। कप्तान साहब फाटक खोलने को कहते हैं।

[सब घबराते हैं। मोटेलाल काँप उठता है]

मोटेलाल—घेर लिया ?····· तब तो, तब तो महा मुश्किल··· (कुछ सोचकर) पहरेदार, तुम लोग इन तीनों (आए हुए कामरेडों) को पकड़ लो।

कामरेड पिल०—यह महा अन्याय होगा लालाजी।

मोटेलाल—(संतरियों से)—इसे भी पकड़ लो। [तब तक फाटक तोड़कर पुलिस-फौज-अफसर रिवाल्वर और संगीनी-बंदूक ताने अन्दर आ पहुँचे]

कप्तान—हैंडस् अप !··· [सब हाथ ऊपर उठाते है]

पुलिस कप्तान—खबरदार, जिस किसी के पास कोई हथियार हो दे दे।

[सब की तलाशी। सिर्फ १ कामरेड के पास से रिवाल्वर और दो के पास से बम निकले। तीनो को हथकड़ियाँ भर दी गई।]

कप्तान०—(अकस्मात् पिलपिल और शास्त्री को देखकर) ओहो, आप लोग भी मौजूद है ? (उन्हे भी हथकड़ियाँ भर कर) यह सर झुकाए कौन हजरत हैं ? (नजदीक जाकर, हँस कर) ओ गुडमौर्निंग मि० क्रोकोडाइलसन ? आपके बारे मे भी सरकारी हुक्मनामा है। (क्रोकोडाइलसन फीकेपन से मुस्कुराता है। (मोटेलाल से) आप अपने बागीचे मे इन मेहमानो के साथ, आधी रात से ही बंद क्यो हो रहे थे ?

मोटे०—(गिड़गिड़ाहट की लजीली मुस्कुराहट से)·· क्या बताऊँ···आप लोग तो जानते ही हैं···हम लोग··· ?

कप्तान (हँसकर) ओ' ब्लेकमार्केटिंग की हिस्सेदारी, राय-मशिवरा, क्यो ?

मोटे०—(उसी अभिनय से) अब, अपने मुँह से क्या कहूँ ? आप तो समझ ही गये। (सबकी ओर देखता है)

कप्तान—तो आप सभी साझेदार हैं ?

मोटे०—जी, इन चारों (कामरेडो) को छोड़कर।

कप्तान—कोई बही-खाता है इस मार्केट का ?

मोटे०—जी नहीं।

कप्तान—(बगलवाले बंद छोटे रूम को दिखाकर) इस रूम मे क्या है ?

मोटे०—जी, इस बंगले की फुटकर चीजे इसमे रहती हैं ।

कप्तान—खोलिये तो…

[मोटेलाल ताला खोलता है, मगर दरवाजा भीतर से बंद देखकर अकचकाता है]

मोटे०—भीतर से बन्द किसने किया ?

कप्तान—(हँसकर, दरवाजे पर ४ दस्तक देता है। द्वार खुल जाता है। अन्दर दो पुलिस ऑफिसर वाकयन्त्र पर कुछ काम करते हुए)

मोटे०—(घबराकर) यह क्या ?

[क्रोकोडाइलसन पाकेट से कुछ निकाल कर मुँह में रख लेता है।]

कप्तान—आपके आज के ब्लैक मार्केट का बोलता चिट्ठा—आपकी बातचीत की रेकर्डिंग। चलिये थाने पर, वहीं सब अपना-अपना बयान सुन लीजिये ।

मुंशी हररूप०—क्या हम लोगो में से कोई सरकारी गवाह नही बन सकता कप्तान साहब ?

कप्तान—आप ऐसे बहुरुपिया तो हरगिज नहीं। [क्रोकोडाइलसन कुरसी पर अचेत हो जाता है। कप्तान जाँच कर अफसोस से सर हिलाता है] अफसोस, इस बेचारे ने खुद ही अपना प्रायश्चित्त कर लिया।

[कप्तान के इशारे से घायल कामरेडो की मरहम-पट्टी की जाती है। दोनो पुलिस ऑफिसर वाक्यंत्र का विवरण देते हैं, कप्तान देखकर उसमे कई जगह निशान लगाते हैं।]

कप्तान—हॉ, यह तो बताइए पत्रकारानन्द जी। भारत के अधिकाश पत्रकार कॉग्रेस के समर्थक हैं। वे अगर उसकी आलोचना करते हैं, तो सुधार भाव से—अपनापन से। फिर, सरकार विरोधी—असंतोष उत्पन्न करने का श्रेय आप क्यो लेना चाहते हैं ?

पत्रकारा०—(कुछ झेंपते हुए—रुक-रुक कर) बात यह है कि कितने ही पत्रकार······

कप्तान—आपकी तरह अवसरवादी है। आज सरकार फेल कर जाय तो कहेगे—इसमे हमारी भी बहादुरी है, अगर मजबूत रहे तो डींग हॉकेगे कि हम तो उसे ऐसा बनाने के लिये ही आलोचना करते थे। वाहरी पत्रकारिता ! (मोटेलाल से) अच्छा लाला सेठ, आपके डबल ब्लैकमार्केट की पोल खुल गई। भगवान और धर्म को आप ठग सकते है, किन्तु सरकार के वफ़ादार कर्मचारियो को नहीं। आपके इस बाग का मुन्नू माली, त्रिभुवन सिंह जमादार और आपका भतीजा रामलाल सरकारी गवाह बन गये हैं।

मोटेलाल—जी, सरकार····· मै केवल ब्लैक-मार्केटिग का दोषी हो सकता हूँ, लेकिन सरकार के विरुद्ध मे······

कप्तान—ब्लैकमार्केटिग ही तो सारी खुराफ़ात की जड़ है खुराफ़ातिया जी। खैर, चलिये बड़े घर !

———